CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन

खण्ड ७

व्यक्ति-दर्शन

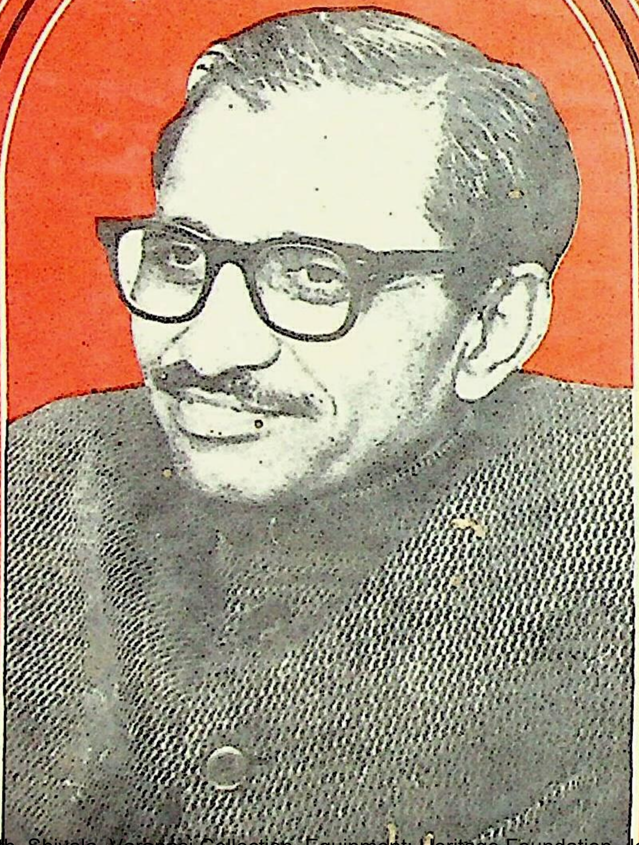

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पं. दीनदयाल उपाध्याय: विचार-दर्शन

खण्ड ७

व्यक्ति-दर्शन

समर्पण

उन साधकों और कर्मवीरों को, जो युगों-युगों से चलती आयी आध्यात्मिक चिन्तनधारा से पोषित श्रेष्ठ जीवनादर्शों को युगानुकूल कलेवर प्रदान करने के लिए कृतसंकल्प हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रमणिका

लेखक की बात	५
व्यक्ति-दर्शन	७
परिशिष्ट १ : राष्ट्रधारा का पुण्य-प्रवाह	४३
२ : सिद्धान्त	५७
३ : आपका मत	६७
४ : कालीकत में अध्यक्षीय भाषण	७१
लेखक-परिचय	८८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंडित दीनदयाल उपाध्याय
विचार-दर्शन

खण्ड ७
व्यक्ति-दर्शन

लेखक
विश्वनाथ नारायण देवधर

अनुवादक
मोरेश्वर तपस्वी

सुरुचि प्रकाशन
केशव कुञ्ज, झण्डेवाला, नयी दिल्ली–११००५५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक:
सुरुचि प्रकाशन
केशव कुन्ज, झण्डेवाला, नयी दिल्ली—११००५५

© सुरुचि प्रकाशन

प्रथम संस्करण: ११ फरवरी, १९८७

मूल्य पुस्तकालय संस्करण २५ रुपये
पत्रावरण (पेपरबैक) संस्करण १४ रुपये

छाया-शब्दसंयोजन (फोटोकम्पोजिंग):
ग्रामीण दुनिया, १९९ साइकिल मार्केट-१,
झण्डेवाला विस्तार, नयी दिल्ली—११००५५

मुद्रक: प्रिन्स आफसैट प्रिन्टर्स
१५१० पटौदी हाऊस, दरियागंज
नई दिल्ली—११०००२
दूरभाष—२७७१५३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेखक की बात

पं.दीनदयाल जी कौन थे? राष्ट्र निर्माण का कंकण बांधे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन के एक आदर्श कार्यकर्ता? एक उदीयमान राजनीतिक दल के महान नेता? भारत का उज्ज्वल भविष्य बनाने का संजीवक सामर्थ्य रखने वाली विचारधारा देने वाले विवेकी विचारक?

दीनदयाल जी क्या थे, इसकी खोज करने का यह एक अल्प प्रयास है। वे कैसे थे, इसका अध्ययन कर निकाले गये निष्कर्ष यहाँ प्रस्तुत हैं। उनके साथ विविध क्षेत्रों में काम कर चुके उनके अनेक सहयोगियों की स्मृतिशलाका ही है यह। प्रयास किया है निष्कर्षों को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत करने का। यहाँ छोटे-छोटे संस्मरण दिये हैं। कहीं-कहीं पर दो-चार प्रश्नों को लेकर संवाद-संभाषण प्रस्तुत किये हैं। इनमें उल्लिखित व्यक्ति कहीं उच्चपदस्थ हैं तो कहीं बिल्कुल सामान्य। उनमें आपको चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों से लेकर अमरीका-इंग्लैंड में उच्च पदाधिकारियों तक विभिन्न श्रेणियों के लोग मिलेंगे। दीनदयाल उपाध्याय जी के बारे में आपसे वे कुछ कह जायेंगे। उनकी स्मृतियों से पं. दीनदयाल जी का निरीह, निरहंकारी, फिर भी प्रेरक व्यक्तित्व हमारे सम्मुख खड़ा होगा। 'कथनी और करनी' में कोई अन्तर न रखने वाला एक नेता आपको दिखाई देगा। सबको रोटी के दो कौर मिल चुके हैं, इसका विश्वास कर लेने के बाद ही कुछ खाने के लिए बैठने वाला परिवार-प्रमुख उनके रूप में हमें यहाँ मिलेगा। थके मांदे बच्चों के पाँव दुखने लगे हों तो उनके पास बैठकर अपने हाथों दबाने-सहलाने की ममता रखने वाला ही अनुशासन का कड़ाई से पालन करा सकता है, यह बात अपने आचरण द्वारा दिखाने वाले वे भारतीय संस्कृति के आदर्श प्रतिनिधि हैं। प्रगति के नित्य नये चरण पार करते समय भी अपने कुल, कुलधर्म तथा कुलाचार को न भुलाने वाला, उसके बारे में गर्व अनुभव करने वाला और जिस पर उसके कुल को भी गर्व हो, ऐसा यह कुलभूषण व्यक्तित्व है।

क्या है यह कुल? क्या है उसका कुलधर्म और कुलाचार? दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आम्रवृक्ष में लगा सुमधुर फल है। उनकी स्मृतियाँ बताने वाले अनेक स्वयंसेवकों के संस्मरण सुन कर यही लगता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य मनुष्य-निर्माण का है। मनुष्य-निर्माण केवल भाषणों या बौद्धिक वर्ग द्वारा नहीं होता। प्रत्यक्ष आचरण और उस आचरण द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्त होने वाले विचार से ही दृढ़ संस्कार होता है। ऐसे संस्कारों से ही मनुष्य का चरित्र बनता है। इस संस्कार का रूप कुछ भी हो सकता है–नियमितता, सौम्य-सरल (सादा) रहन-सहन, स्वदेशी के व्रत का पालन या अपने सहयोगियों के साथ अत्यंत हार्दिकता का नाता जोड़ना।

रा.स्व.संघ द्वारा अपने कार्यकर्ताओं से की जाने वाली अपेक्षाओं के पूर्णतः अनुरूप आचरण रखने का पं. दीनदयाल जी ने प्रयास किया। अपनी आयु या अधिकार का बड़प्पन उन्होंने कभी नहीं जताया। उनकी तो यही धारण रही कि अधिकार का पद कर्त्तव्यपूर्ति का एक साधनमात्र होता है। एकरसता की भावना को उन्होंने पल भर के लिए भी दूर होने नहीं दिया। संघ की तो परिपाटी ही है कि जिस घर में जायें, वहाँ के सुख-दुखों के साथ एकरस होना चाहिए। सारा देश आज अनुभव करता है कि अन्य किसी संस्था-संगठन की अपेक्षा संघ के कार्यकर्ता अधिक अपनत्व का व्यवहार करते हैं। उनके पारिवारिक संबंध उच्चकोटि के होते हैं, दृढ़ होते हैं और आंतरिक ममता उनमें ओतप्रोत हुआ करती है। यह संस्कार कोई एक दिन में नहीं दिया जा सकता। डा. हेडगेवार और श्री गुरु जी के आदर्शों की भांति पं.दीनदयाल जी भी अपने निरन्तर प्रवास में इसी पारिवारिकता की भावना से ही भ्रमण करते हुए दिखाई देते हैं। उनकी माताएँ, बहिनें, भांजी-भतीजियाँ इस स्मृति-प्रदेश में हमें स्थान-स्थान पर मिलेंगी।

-वि.ना.देवधर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्ति-दर्शन

संगठनकर्ता का परिवार

मेरठ के श्री मानसिंह वर्मा के घर से जुड़े हुए कुछ प्रसंग हैं:

श्री मानसिंह जी जनसंघ की स्थापना के समय से दल के कार्य में अग्रसर रहे थे। १९५२ में देश की स्वाधीनता के बाद हुए प्रथम महानिर्वाचन (आम चुनाव) के समय उन्हें चुनाव के लिए खड़े होने का आदेश दिया गया। जी हाँ ! आदेश ही दिया गया। उन दिनों दल का टिकट पाने के इच्छुकों की भीड़ नहीं हुआ करती थी। दल नया था। विजय की अपेक्षा पराजय की संभावना ही अधिक स्पष्ट दिखाई देती थी। ऐसे समय चुनाव लड़ना था। मानसिंह वर्मा को दीनदयाल जी और नानाजी देशमुख ने चुनाव लड़ने का 'आदेश' दिया था। मानसिंह जी के घर की स्थिति चुनाव दंगल में उतरने के लिए कतई अनुकूल नहीं थी। घर में चार छोटे-छोटे बच्चे थे और पत्नी सदैव रोगग्रस्त रहती थी। लाख प्रयत्न करने पर भी इन सब बातों का प्रभाव कार्य पर पड़ना ही था। फिर भी दल का आदेश सिर-आँखों पर रखकर मानसिंह जी चुनाव के अखाड़े में उतरे। चुनाव अभियान अपने पूरे वेग पर था। दौरे किये जा रहे थे, भाषण दिये जा रहे थे और मतदान को अब केवल दो सप्ताह ही रह गये थे कि मानसिंह जी की धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। मानसिंह जी पर मानो पहाड़ टूट गया। किन्तु यह आपत्ति केवल उन्हीं तक सीमित नहीं रही। दीनदयाल जी मात्र चुनाव लड़ने का आदेश देने वाले नेता नहीं थे। वे मानसिंह जी के बड़े भाई भी थे। चुनाव दंगल समाप्त होने के बाद उन्होंने और नानाजी ने मिलकर योग्य वधू खोजकर उनका पुनर्विवाह करा दिया। इस घटना के बारे में मानसिंह जी कहते हैं—

"छोटे-छोटे बच्चों और उनके स्वास्थ्य की चिन्ता मुझे खाये जा रही थी। किन्तु दीनदयाल जी ने यह दिखा दिया कि यह चिन्ता केवल मुझे ही नहीं, उनको भी थी। जब भी प्रवास में हमारे नगर में आते, तो कार्यक्रम कितने ही क्यों न हों, वे मेरे यहाँ पाँच मिनट के लिए सही, अवश्य पधारते थे और बच्चों के बारे में पूछताछ किये बिना नहीं जाते थे।

"एक प्रसंग आज भी भलीभांति मेरी स्मृति में है। मेरा पुनर्विवाह कराने की बात चलाने के लिए वे मेरे यहाँ आये तो मैंने स्पष्ट मना कर दिया था। किन्तु बड़ी ममता से उन्होंने मुझे कितने ही प्रकार से समझाया-बुझाया था। आज इतने वर्ष बाद मुझे सन्तोष है कि मैंने तब उनकी बात मान ली। संभाषण के दौरान दीनदयाल जी ने कहा था—"मानसिंह, यह ध्यान रखना चाहिए कि परमात्मा की इच्छा से परे जाकर कुछ भी नहीं हुआ करता।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्री मानसिंह वर्मा की द्वितीय पत्नी सावित्री तो दीनदयाल जी की बहिन ही हो गयी थी। केवल औपचारिक भेंट करने तक ही यह नाता सीमित नहीं था। उसमें कितनी हार्दिकता थी, लीजिए, उनकी इस बहिन के शब्दों में ही पढ़ें:

"एक दिन की बात है, रात एक बजे हमारे दरवाजे पर लगी घंटी बज उठी। वर्मा जी द्वार खोलने गये और देखा कि चार-पाँच कार्यकर्ताओं को साथ लिये दीनदयाल जी खड़े हैं। वास्तव में वे नगर में थे तो दिन भर से, किन्तु आये नहीं इसलिए मुझे बुरा लग रहा था। उन्हें देखते ही मैं हर्ष से फूली न समायी। किन्तु उन्हें कितने कष्ट उठाने पड़ रहे हैं, इसका विचार आकर दु:ख भी हुआ। मैंने कहा—"पंडित जी रात का एक बज चुका है और आप अभी तक घूम ही रहे हैं। विश्राम कब करिएगा? तड़के उठकर आपको अगली गाड़ी भी तो पकड़नी है न?"

पंडित जी ने कहा—"विश्राम की बात क्यों ले बैठी हो? रहने भी दो। किंतु यह तुमने कैसे सोच लिया कि बहिन से मिले बिना मैं यहाँ से चला जाऊंगा? दिन भर तो एक मिनट का भी समय नहीं मिल पाया, इसलिए सोचा, जाते-जाते कम से कम भेंट तो कर ही आऊँ। इसीलिए आ गया।"

उनका ऐसा ममत्व देखकर मेरी आँखें छलछला आयीं। देखकर वे बोले, "यह क्या पगला रही हो? रोने-धोने की क्या बात है? अच्छा, बताओ तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? बच्चों का क्या हाल है? और बहिन, कुछ दुबली नजर आ रही हो? क्या कष्ट है?"

"साहस कर मैंने कहा—"मुझे क्या होना-जाना है। आप और नानाजी जैसे भाई चिन्ता करने के लिए हों तो मुझे भला क्योंकर कोई कष्ट रहेगा?"

मुझे बीच में ही रोककर बोले—"अजी वाह ! तो तुम्हें बातें बनाना भी आता है। अच्छा, अब केवल बतियाती ही रहोगी या हमें कुछ खिलाने-पिलाने का विचार भी है?"

"इतनी देर रात मेरे यहाँ आकर अधिकारपूर्वक मुझसे चाय मांगने वाले मेरे भाई अब नहीं रहे, इसका दुख उनकी याद आते ही मन में उभर आता है।"

इस एक छोटे से प्रसंग में दीनदयाल जी के व्यक्तित्व का प्रतिबिंब अंकित है। जिस कार्यकर्ता से काम कराना है, उसके निजी सुख-दुखों के साथ भी अपना नाता रखने की भावना के बिना विश्वास और निष्ठा का सम्बन्ध जुड़ नहीं सकता। ऐसा नाता जुड़ने के बाद उसके घर के सभी लोग हमारे अपने हो जाते हैं।

अब देखें श्री नारायणस्वरूप शर्मा की नन्हीं-सी पुत्री अन्नपूर्णा के साथ उसके दीनदयाल मामा जी कितने प्रेम से पेश आते हैं।

कालीकत में हुए जनसंघ के अधिवेशन का बहुत बोलबाला रहा। उसे प्रसिद्धि भी बहुत मिली थी। दीनदयाल जी उस अधिवेशन के अध्यक्ष थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्नपूर्णा चाहती थी कि अधिवेशन में उपस्थित रहकर दीनदयाल जी का अभिनन्दन करे। किन्तु नारायणस्वरूप जी उसे कालीकत नहीं ले गये थे। अपने पिता पर इसलिए वह कुछ रुष्ट भी थी। किन्तु कहती किससे? अन्ततः वसन्त पंचमी के उपलक्ष्य में दीनदयाल जी और अटल जी घर पर आये तो उसने अपनी शिकायत उनके सामने रख दी। वह प्रसंग उन्हीं के शब्दों में—

"दीनदयाल जी आये और फर्श पर बिछी एक दरी में बैठकर पढ़ाई कर रही अन्नपूर्णा के पास दरी पर ही बैठ गये। अन्नपूर्णा ने कहा—"पिता जी मुझे कालीकत नहीं ले गये, इसलिए मैं उनसे नाराज हूँ। आप ही उन्हें बता दीजिए।" दीनदयाल जी ने बिटिया को अपने साथ ले लिया और मुझसे बोले—"शर्मा जी, आप इसे कालीकत क्यों नहीं ले गये? अब से आगे जनसंघ के हर अधिवेशन में इसे लाया जाना चाहिए।"

"बस अन्नपूर्णा गद्‌गद् हो गयी। उसके मन में दीनदयाल जी और जनसंघ के बारे में जो ममत्व निर्मित हो गया, वह सदा बना रहा।"

श्री नारायणस्वरूप शर्मा कुछ समय इंग्लैंड में रहे थे। अपने विदेश-प्रवास में दीनदयाल जी उनके घर गये थे।

श्रीमती शर्मा भी उनसे बातचीत करने आ बैठती थीं।

एक बार यों ही बातों-बातों में उन्होंने पूछा—"दीनदयाल जी, आपने विवाह क्यों नहीं किया?"

"क्यों भई, क्यों पूछ रही हैं आप? आखिर विवाह किसलिए किया जाये?"

"आपकी देखभाल कौन करेगा?"

"मेरी देखभाल करने की कोई आवश्यकता है ही नहीं। और मान लीजिए कि कभी ऐसी स्थिति आ भी जाय, तो मेरी माँ-बहिनें ही मेरी देखभाल कर लेंगी। मुझे इस बात की चिन्ता कभी नहीं होती।"

"किन्तु माँ या बहिनें पत्नी के समान देखभाल तो नहीं कर सकतीं।"

श्रीमती शर्मा के इस कथन से दीनदयाल जी क्षण भर तो चुप रहे, किन्तु फिर उन्होंने तुरन्त कहा—"मैंने विवाह किया होता तो मेरा बहुत-सा समय घर-परिवार चलाने में ही लग जाता। राष्ट्र-कार्य के लिए समय कम रहता। रही बात मेरी देखभाल करने की, भारत से छः हजार मील दूर लन्दन में रहने वाली तुम्हारी जैसी बहिन जब मेरी चिन्ता कर सकती है तो फिर मुझे अपनी चिन्ता करने की आवश्यकता भी क्या है? इतनी चिन्ता मेरे लिए काफी है।"

श्री नारायणस्वरूप शर्मा कहते हैं—"इस और ऐसे ही संभाषणों के कारण मेरा सारा परिवार उनको बहुत चाहने वाला हो गया। आगे चलकर तो मेरी पत्नी उनके पत्र का आदर करने के लिए लन्दन से जाकर जनसंघ के एक अधिवेशन में उपस्थित भी रहीं थीं।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ममता और कर्मकठोरता भी

आंतरिक ममता और स्वस्थ पारिवारिक भावना, संघ कार्यकर्ताओं का एक महत्त्वपूर्ण गुण होता है। दीनदयाल जी तो ऐसे गुणों का आदर्श ही थे। कुछ स्वयंसेवकों के अनुभव बहुत ही मुखर हैं। शाहजहाँपुर के एक कार्यक्रम के समय का संस्मरण श्री हरिश्चन्द्र ने सुनाया। शिविर शाहजहाँपुर से आठ मील दूर था। निश्चय हुआ था कि सात-सात स्वयंसेवकों के गट बनाकर बारी-बारी से शिविर-स्थान देखने के लिए जाया जाये। मार्ग में खड़िया मिट्टी से संकेत बनाये जाते थे ताकि मार्गदर्शन बराबर मिलता रहे। हरिश्चन्द्र जिस गट में थे उसके निकलते-निकलते शाम ढल गयी थी। अन्धेरा होने लगा था। ये लोग मार्ग भटक गये। पथ-संकेत के पत्थर भी अन्धेरे में दिखाई नहीं देते थे। एक स्थान पर तो इस गट के लोगों को तैर कर नाला पार करना पड़ा। शिविर-स्थान पर ये लोग पहुँचे तो रात के दो बज चुके थे। दीनदयाल जी जाग रहे थे। हरिश्चन्द्र लिखते हैं—"वे हमारी बाट ऐसे जोह रहे थे जैसे माँ अपने बच्चों की जोहा करती है। हमारे सोने आदि का प्रबंध स्वयं देखने के बाद ही जाकर वे सोये।"

किन्तु ऐसी ममता और वत्सलता रखने वाले इस नेता का मन उतना ही कर्त्तव्यकठोर भी था। श्री हरिश्चन्द्र ने दूसरे ही दिन इसे अनुभव किया। वे कहते हैं—"रात दो बजे तक जागते रहने पर भी दीनदयाल जी प्रातः छः बजे नियत समय पर संघ-स्थान पर उपस्थित थे और हमें देरी हो जानें के कारण हम पर रुष्ट भी हुए थे। मुझे तो उन्होंने देर से आने के लिए दण्डित भी किया था संघ-स्थान की पाँच बार दौड़कर परिक्रमा करने का आदेश देकर।"

संघ का कार्य स्वयंप्रेरणा से करना चाहिए। आत्मानुशासन उसका प्राण है। सुविधा-सहूलियतों से यह काम नहीं किया जाता, स्वयं को घिस कर संघ का काम करना होता है। कष्ट हो, तब भी उसे करना ही चाहिए। यह सीख इससे अच्छे और किस उदाहरण द्वारा सिखायी जा सकती है?

आत्मानुशासन तो संघ की कार्यप्रणाली की अपनी विशेषता है। उस पर बहुत बल दिया जाता है। दीनदयाल जी जैसा संघ का महान कार्यकर्ता इन गुणों का आदर्श प्रस्तुत न करता, तभी बात आश्चर्य की होती। अधिकार-पद तो एक व्यवस्था मात्र है, बाकी हम सभी स्वयंसेवक ही हैं, यह थी उनकी भावना। उन्होंने सदैव उसके अनुसार ही आचरण रखा।

निरहंकारी नेतृत्व

कानपुर में १९६० में संघ-शिक्षा वर्ग लगा था। तब की घटना श्री प्रेम शंकर शुक्ल ने लिखी है। संघ-शिक्षा वर्ग में चौबीसों घंटे अनुशासन का वातावरण रहता था। इसमें थोड़ा भी अवकाश मिल जाय, तो स्वयंसेवक शरारत करने का अवसर ले लेते थे। दोपहर के भोजन के बाद हाथ धोने और बर्तन सफाई करने नल के पास पंक्तिबद्ध खड़ा होना पड़ता था। नल के नीचे किसी का बर्तन रखा हो तो उसे उठाकर फैंकना और वहाँ अपना बर्तन रखना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वयंसेवकों की प्रायः होने वाली शरारत होती थी। इसे 'लोटा-युद्ध' कहा जाता था। इसी पंक्ति में एक धोती-कुर्ता पहने कार्यकर्ता अपनी बारी आने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी बारी आने पर उसने अपना लोटा नल के नीचे रखा। एक शरारती स्वयंसेवक ने उस लोटे को उठाकर फैंक दिया। वह कार्यकर्ता हँस पड़ा। उसने दूर फैंक दिया गया लोटा उठा लिया और वह फिर से पंक्ति में लगकर बारी की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। दोपहर में बौद्धिक वर्ग के समय वही कार्यकर्ता बौद्धिक वर्ग लेने के लिए खड़ा हुआ। 'आज आपके सम्मुख पं. दीनदयाल उपाध्याय बोलने वाले हैं'—यह उनका परिचय दिया गया। उस 'शरारती' स्वयंसेवक की आँखें भर आयीं। एक ज्येष्ठ नेता की खिल्ली उड़ाने की बात उसको टीसने लगी। अपने अधिकारी के पास जाकर उसने मन की बात बता दी और कहा—"मैंने तो सपने में भी न सोचा था कि पंडित दीनदयाल जी इतने सादे और निरहंकारी होंगे।"

कानपुर के उस स्वयंसेवक को ही क्यों, अन्य किसी को भी दीनदयाल जी के बारे में इससे विपरीत अनुभव कभी नहीं मिला। अपने लिए कुछ अलग से किया जाय, वरिष्ठ पदाधिकारी होने के कारण अपने लिए कुछ विशेष प्रबंध किया जाय, इसकी अपेक्षा तक उन्होंने कभी नहीं रखी थी। जनसंघ के बड़े नेता बन जाने के बाद भी वे नागपुर के संघ-कार्यालय में ही ठहरते थे। वहाँ के भोजनालय में काम करने वाले मंगल प्रसाद की बात सुनने योग्य है। मंगल प्रसाद बताता है: "नागपुर आने पर पंडित जी कार्यालय में ही आकर रहते थे। आते ही वे सभी कमरों में चक्कर लगा आते। उसमें भोजनघर भी शामिल था। रसोई में आते ही पूछते—"भाई मंगल, कैसे हो?" इतने बड़े राजनीतिक दल का नेता मुझे 'भाई मंगल' कहकर पुकारता है, इस बात से मुझे बहुत हर्ष और अचरज भी होता था। फिर मैं उनसे पूछता—"पंडित जी,आपके लिए क्या बनाऊँ?" तो वे हँसकर उत्तर देते—"कुछ भी विशेष बनाने की आवश्यकता नहीं, जो सबके लिए बनेगा वही खाऊंगा।" उन्होंने अपने लिए अलग से कभी कुछ मांगा ही नहीं। कभी सन्देशा आता कि 'पंडित जी आज भोजन नहीं करेंगे।' फिर मैं उनके कमरे में जाकर पूछता और मेरे अधिक आग्रह करने पर वे एक गिलास दूध ले लेते।"

बम्बई में वे जिनके यहाँ ठहरा करते थे, वहाँ की गृहिणी ने लिखा है—"हमारे यहाँ अनेक नेता आते रहते हैं। कोई नेता आ रहे हों तो उनकी अच्छी देखभाल करने की एक चिन्ता तो मन में होती ही है। किन्तु दीनदयाल जी आने वाले हों तो ऐसी कोई चिन्ता मुझे नहीं होती थी। लगता था मानो बाहर प्रवास पर गया अपना ही कोई भाई या सगा-सम्बन्धी आ रहा है।"

१९६७ के कालीकत अधिवेशन के दीनदयाल जी अध्यक्ष थे। किन्तु वहाँ भी अध्यक्ष होने का बड़प्पन दिखाते घूमने-फिरने का विचार भी उनके मन में कभी आया नहीं। उनके एक सहयोगी श्री पी. परमेश्वरन् ने लिखा है—"दीनदयाल जी अधिवेशन-स्थान तक कभी मोटर में बैठ कर नहीं जाते थे। अन्य प्रतिनिधियों की भांति वे भी पैदल चल कर जाते और प्रवेश-द्वार पर खड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वयंसेवक को अपना प्रवेश-पत्र दिखाते। वे जहाँ ठहरे थे वहाँ धोबी कपड़े लेने आता तो उससे कहते—"बोलो भाई !" इतना बड़ा नेता अपने को 'भाई' कहता है, इसका धोबी को बड़ा आश्चर्य होता। कुछ दिनों बाद दीनदयाल जी की मृत्यु का दुखद समाचार आया तो मैंने उस धोबी को आँसू बहाते देखा।"

उनका सादापन उनकी वेशभूषा, खान-पान और प्रवास में भी दिखाई देता था। पंडित जी प्रायः यात्री-गाड़ी में तीसरी श्रेणी के डिब्बे में ही यात्रा किया करते थे। पैसे की बचत की दृष्टि तो इसमें थी ही, किन्तु उनके गणित से इसके और भी कई लाभ थे। वे कहा करते थे कि यात्री-गाड़ी में लिखने-पढ़ने के लिए बहुत समय मिलता है। अपने कई पत्र उन्होंने ऐसी प्रवास-यात्रा में ही लिखे हैं। किन्तु ऐसी यात्रा में भी उसके सारे नियम और विधानों का पालन करने में वे बहुत सतर्क रहते थे। ऐसी दो घटनाएं उल्लेखनीय हैं।

सामाजिक नैतिकता

एक बार पंडित जी वाराणसी से बलिया जा रहे थे। तीसरी श्रेणी के डिब्बों में चींटी के घुसने तक का स्थान नहीं था। अतः टिकट तीसरी श्रेणी का होते हुए भी उनका बिस्तर दूसरी श्रेणी में लगा दिया गया और उन्हें बरबस दूसरी श्रेणी में यात्रा करनी पड़ी। (उन दिनों रेलगाड़ी में तीन श्रेणियाँ होती थीं।) गाड़ी बलिया पहुँची तो पंडित जी ने उतर कर टिकट निरीक्षक से पूछा कि वाराणसी से बलिया तक दूसरी और तीसरी श्रेणी के यात्रा-किराये में कितना अन्तर है। उतनी राशि ले लेने का आग्रह भी उन्होंने उस निरीक्षक से किया। टिकट निरीक्षक ने कहा—"आप जाइए भी अब। यहाँ किसके ध्यान में है कि आप किस श्रेणी से आये हैं?" पंडित जी ने तब स्टेशन मास्टर को पकड़ा और उतनी राशि थमा दी। उस स्टेशन मास्टर ने कहा—"नौकरी करते मुझे ३० वर्ष हो गये हैं, किन्तु किराये में रहे अन्तर की राशि स्वयं देने आये आप ही पहले यात्री हैं।"

इस प्रकार दीनदयाल जी का व्यवहार एक अर्थ में अलौकिक ही था। वे कहा करते थे—"सेवा का अनधिकार उपयोग एक प्रकार की चोरी ही है।"

श्री सुमनभाई पारेख नामक कार्यकर्ता का अनुभव भी कुछ ऐसा ही है। बात १९६० की है। दीनदयाल जी राजकोट में संघ-शिक्षा-वर्ग के लिए जा रहे थे। उनका टिकट प्रथम श्रेणी का था। सुमनभाई को प्रथम श्रेणी का टिकट नहीं मिल पाया था। वे तीसरे श्रेणी के डिब्बे में थे जो काफी दूर था। व्यावर स्थानक पर दीनदयाल जी के लिए भोजन लाया गया था। भोंजन का डिब्बा अजमेर स्थानक पर वापस करना था। सुमनभाई अपने डिब्बे में बैठे कुछ पढ़ रहे थे। तभी उन्होंने सुना कोई 'सुमनभाई,सुमनभाई' कहकर पुकार रहा है। देखते हैं तो पाया कि दीनदयाल जी हाथ में भोजन का डिब्बा लिये दौड़ते-भागते उन्हें ढूँढ रहे हैं। सुमनभाई लपक कर आगे बढ़े और पूछा—"पंडितजी, आप स्वयं क्यों कष्ट उठाते आये हैं?" हँसते-हँसते उन्होंने उत्तर दिया—"तो क्या इतना अधिक भोजन मैं अकेले खा सकता था? मेरे डिब्बे में आप आकर बैठते तो वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नियमानुसार नहीं होता। किन्तु मैं आपके डिब्बे में बिना किसी संकोच के बैठ सकता हूँ।"

हो सकता है कि दीनदयाल जी की दृष्टि से इस घटना में विशेष कुछ भी न हो और वह नित्यक्रम मात्र ही हो, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि इस घटना से सुमनभाई जैसे कार्यकर्ताओं को सफल नेतृत्व की झलक देखने को मिली। प्रवास में समंजन (एडजस्टमेण्ट) के नाते कोई किसी भी श्रेणी के यान में यात्रा करे, क्या अन्तर पड़ता है। किन्तु सार्वजनिक प्रामाणिकता के नाते सबको संजोये रखने योग्य गुण वही है, जो दीनदयाल जी ने प्रकट किया। क्या इसमें से सबको यह शिक्षा नहीं मिलती कि सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं या सुविधाओं के सम्बध में व्यवस्था और नियमों का ध्यान रखते हुए अपना आचरण स्वच्छ रखें? और यह पाठ भी उन्होंने कितनी सहजता से सिखा दिया! फूलों को कहाँ भान होता है कि वे आसपास के वातावरण को सुंगध से भर रहे हैं।

सौजन्य में भी तत्त्वाग्रही

किन्तु कभी-कभी कार्यकर्ताओं को समझाने का काम भी नेता को करना पड़ता है। दीनदयाल जी को ऐसा कई बार करना पड़ा था। किन्तु समझाने की उनकी शैली बहुत सौम्य और विशेषतायुक्त होती थी। उत्तर प्रदेश के शचीन्द्रनाथ बक्षी नामक कार्यकर्ता इस बारे में अपना अनुभव बताते हैं। १९६७-६८ की बात है। उस समय राज्य सरकार संविद की थी और उसके कुछ मंत्री जनसंघ के थे। संबद्ध मंत्रालयों में अपना काम बन जाये, इस हेतु कई स्वदलीय कार्यकर्ता प्रयत्नशील होते थे। इसमें कुछ अनहोनी बात इसलिए नहीं थी कि कांग्रेस के शासन ने लोगों को वैसी ही आदत डाली थी। लखनऊ में जनसंघ के खुर्शीदबाग कार्यालय में एक कार्यकर्ता पधारे। उनके गाँव की किसी शिक्षा-संस्था की कोई समस्या थी। इन महाशय को उस संस्था की कार्यकारिणी से निकाल दिया गया था, इसलिए क्रोध में आकर ये कार्यकर्ता मांग करने आये थे कि शिक्षा मंत्रालय जनसंघ के मंत्री के अधीन है, अतः सरकार उस शिक्षा-संस्था को अपने अधिकार में ले ले। झगड़ा कुछ व्यक्तिगत प्रकार का था। उनकी मांग नियमानुसार भी नहीं थी। अतः बक्षी जी ने कार्यकर्ता को समझाया कि काम होने की संभावना नहीं है। किन्तु कार्यकर्ता महाशय अपने हठ पर अड़े रहे। अन्ततः बक्षी जी भी उकता गये। कुछ बिगड़ कर ही उन्होंने कहा—"देखिए महोदय, सच पूछें तो इस काम के लिए आपको लखनऊ आने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। सौ-दो सौ लोगों को साथ लेते और उस संस्था पर अधिकार कर लेते। हो जाती थोड़ी मारपीट; दो-चार सिर फूटते तो सरकार अपने आप ध्यान देती।" बक्षी जी के इस उत्तर से वे महाशय बहुत रुष्ट होकर चले गये। उन्होंने बक्षी जी की शिकायत भी कर दी।

संयोग से उस दिन दीनदयाल जी कार्यालय में ही थे। बक्षी जी और उस कार्यकर्ता में हुआ संभाषण और उसका अन्त उन्होंने भीतर के कमरे से सुना भी था। उस रात दीनदयाल जी ने बक्षी जी को बुलवा लिया और कहा—"दद्दा, हर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्ति हर बात में उचित-अनुचित का विचार करते हुए थोड़े ही मांग किया करता है। उसके अपने भी कुछ क्रोध-लोभ तो होते ही हैं। मैं जानता हूँ कि नियमों के अनुसार कार्य करते समय हमें किसी-किसी को रुष्ट भी करना पड़ेगा, किन्तु दद्दा, इन्कार भी क्या मधुर शब्दों में नहीं किया जा सकता? हम लोग कार्यकर्ता हैं, हम तो समझदार हैं न? फिर तोड़ने की भाषा में बात हम करें ही क्यों? जहाँ तक हो सके, हमें किसी के मन को दुख नहीं देना चाहिए।" यह संस्मरण बताकर बक्षीजी आगे लिखते हैं—"मैंने दीनदयाल जी को अपना पक्ष बता दिया। मैंने कहा—"पंडितजी, वह व्यक्ति एक नहीं सुन रहा था। कितनी बार समझाया ! अन्त में मारपीट और शक्ति-प्रदर्शन की बात तो वह समझ ही गया न?" इस पर दीनदयाल जी ने कहा—"दद्दा, वह कार्यकर्ता तो आपके बच्चे की आयु का था। आप उसे थोड़ा और समझा-बुझा देते तो क्या वह नहीं मान जाता?"

बक्षीजी लिखते हैं—"किसी बात तो समझाकर बताते समय भी वे कितने संयमी होते थे! हो सकता है कि शायद इसीलिए मैंने उन्हें वचन दिया कि अब से आगे मैं लोगों से बेकार में ही झिड़की-घुड़की भरी बात नहीं करूंगा, किसी के मन को तोड़ देने वाली वाली बात नहीं करूंगा।" प्रत्यक्ष घटना हो जाने के कई वर्ष बाद बक्षी जी ने यह संस्मरण लिख रखा है। उनका कहना है कि इस घटना का उनके मन पर दीर्घकालीन संस्कार हो गया। उन्होंने लिखा है—"वे महाशय चले तो गये, किन्तु मेरे मन पर एक प्रकार का भारी बोझ आ गया था, जो दीनदयाल जी से बातें करने के बाद ही कहीं हल्का हो पाया। आगे के व्यवहार की मानो एक दिशा भी मुझे मिल गयी। तब से मैं बराबर इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता हूँ कि किसी के मन को दुख नहीं पहुँचाऊँ। इसके कारण किसी का काम न भी बने, तब भी वह रुष्ट होकर नहीं जाता।"

वैसे तो कर्तव्यकठोर बनने के कई प्रसंग दीनदयाल जी के समक्ष आये होंगे, किन्तु उड़ीसा में जगन्नाथ-मंदिर में उन पर बीती बात उनकी इस कठोरता का अधिक अच्छा परिचय कराने वाली है। पं. दीनदयाल जी वैसे बड़े सश्रद्ध व्यक्ति थे। अतः स्वाभावविक था कि वे उड़ीसा के दौरे में जगन्नाथ का दर्शन करने के लिए भी जाते। वे मन्दिर में पहुँचे ही थे कि वहाँ के पुजारियों एवं पुरोहितों ने उन्हें घेरा और लगातार कहते रहे कि यहाँ इतने, वहाँ उतने पैसों का चढ़ावा रखिए। आगे चलकर तो एक पुरोहित ने एक स्थान पर पैसे चढ़वाने की जबरदस्ती की। पंडित जी आपे से बाहर होने लगे। अन्त में दर्शन-परिक्रमा अधूरी छोड़कर और जगन्नाथ का दर्शन किये बिना ही वे मंदिर से चले आये।

सायंकाल पुरी में उनकी सभा थी। सभा का आयोजन मंदिर-परिसर में ही किया गया था। भाषण में उन्होंने प्रातः हुई घटना का उल्लेख किया। उन्होंने कहा—"एक कट्टर सनातनी के नाते अत्यंत भक्तिभावना से मैं मंदिर में गया था, किन्तु एक पूरा आर्यसमाजी बन कर मैं बाहर आया। मैं भगवान के दर्शन करने से वंचित तो अवश्य ही रहा हूँ, किन्तु भगवान के दलाल बन बैठे लोगों के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सामने झुकने के बजाय भगवान का दर्शन किये बिना वहाँ से चले आना ही मैंने उचित समझा।" भक्तों को मंदिर-परिसरों में त्रस्त किया जाना उन्हें असहनीय तो लगा ही, उसके विरोध में मंदिरत्याग करने का उन्होंने निर्णय किया। उनके भाषण के बाद मंदिर के न्यासी पुरोहित उनसे मिलने आये। दर्शन करने के लिए चलने का आग्रह उन्होंने किया। किन्तु दीनदयाल जी ने फिर से मंदिर जाने से इन्कार कर दिया।

पंडितजी के सौजन्यशील स्वभाव की कितनी ही स्मृतियाँ उनके साथ रहे, एवं साथ यात्रा किये स्वयंसेवकों ने और कार्यकर्ताओं ने लिख रखी हैं। शिवकुमार अस्थाना इनमें से एक हैं। १९५२ के महानिर्वाचन (आम चुनाव) में दीनदयाल जी के साथ वे प्रवास में थे। उनका कहना है कि पंडितजी काशी से रामनगर एक सभा के लिए बस में जा रहे थे। लगातार प्रवास के कारण थकान अनुभव कर रहे थे। शरीर में कुछ हरारत थी और लघुशंका का भी कुछ कष्ट था। बार-बार जाना पड़ रहा था। एक छोटे स्थान पर बस रुकी तो पंडित जी कंडक्टर को बताकर लघुशंका के लिए गये। उन्हें कुछ विलंब होने लगा। बस का एक अन्य यात्री शिकायत के सुर में बड़बड़ाते हुए देर होने की शिकायत करने लगा। शिवकुमार जी ने उसे समझाया कि क्यों देर हो रही है। किन्तु वह बकझक करता रहा। बस में चढ़ते-चढ़ते पंडित जी ने उनका कुछ संभाषण सुन लिया था। अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व उन्होंने उस यात्री से क्षमा मांगी—"सरदारजी, माफ कीजिए। स्वास्थ्य कुछ खराब है, इसलिए थोड़ी देर हो गयी।" पंडित जी के इस सौजन्य से उस यात्री का क्रोध कुछ कम तो हुआ, किन्तु पूरा उतरा नहीं। संयोग की बात है कि रामनगर की सभा में वे सरदारजी भी थे। सभा समाप्त होने के बाद वे पंडिजी से मिलने आये और आँखों में आँसू भरकर बोले—" माफी मुझे आपसे मांगनी चाहिए। सुबह मैं आपके साथ बहुत ही बेवकूफी से पेश आया।" कहकर सरदार जी चले गये।

संगठक दीनदयाल

लोकसंग्रह करने का व्रत लेने पर सामंजस्य और सौजन्य आदि गुणों की उपासना करना अपरिहार्य हो जाता है। लोगों के मन को न दुखाते हुए अपना इष्ट कार्य करवा लेने का कौशल दीनदयाल जी में था। एक बार तो स्वयं श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने भी इस कौशल को अनुभव किया। इसके बारे श्री रामदास कलसकर जी लिखते हैं—

"पंजाब का दौरा पूरा कर अटल जी दिल्ली लौटे थे। पता नहीं, शायद प्रवास में उन्हें कोई कष्ट हुआ था या कार्यकर्ताओं ने उन्हें अधिक तंग किया था, जिससे अटलजी जब आये तो कुछ झल्लाये हुए थे। छूटते ही उन्होंने घोषित कर दिया—"बस, बहुत हुआ। आगे का प्रवास रद्द। मैंने कहीं आना-जाना नहीं है।" जो भी हो, वातावरण गंभीर हो गया। सारे कार्यकर्ता देख रहे थे कि दीनदयाल जी की प्रतिक्रिया इस पर क्या होती है। शांति को तोड़ते हुए दीनयाल जी ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा—"अच्छा भाई, आप पहले स्नान तो कर लीजिए, फिर देखेंगे क्या करना है।" अटल जी नहाने चले गये। उनके स्नान कर आते तक इधर दीनदयाल जी ने स्वयं रोटियाँ और दाल-सब्जी बना ली और अटल जी को आग्रह करके खिलाया। भोजन के बाद अटल जी अपने आप आगे दौरे पर निकल गये। दीनदयाल जी को और कुछ कहना नहीं पड़ा।"

प्रा. बलराज मधोक का अनुभव भी इससे भिन्न नहीं। १९५८-५९ में जनसंघ की अखिल भारतीय कार्यकारिणी की बैठक बम्बई में चल रही थी। दीनदयाल जी सभा का संचालन कर रहे थे। किसी विषय पर चर्चा हो रही थी। दीनदयाल जी ने सुझाया कि हर सदस्य अपनी बात संक्षेप में रखे। किन्तु बलराज मधोक का भाषण अधिक ही लम्बा खिंचता चला गया। अन्त में पंडित जी ने उन्हें भाषण समाप्त करने को कहा। "मेरे भाषण के समय सदैव यही होता है।" कहते हुए बलराज जी कुछ रुष्ट से होकर बैठ गये। दूसरे दिन प्रवास के कार्यक्रम निश्चित करने के लिए बैठक प्रारंभ हुई। दीनदयाल जी ने अपनी सदा की प्रसन्न शैली में पूछा—"बलराज जी, आप कहाँ जायेंगे?" कल वाला रोष अभी शांत नहीं हुआ था, अतः बलराज जी ने कहा—"मेरी आवश्यकता ही क्या है?" पंडित जी ने शांत चित्त से कहा—"मद्रास, केरल आदि राज्यों में अंग्रेजी में बोलना हितकारी होता है और जनसंघ की भूमिका को अंग्रेजी में तो आप ही समझा सकते हैं। आपका दौरा उधर प्रभावशाली रहेगा।" इस एक छोटे से वाक्य ने जादू का काम कर दिया। मधोक जी ने वह प्रवास करना स्वीकार किया और उसे भली भांति पूरा भी किया।

कार्यकर्ताओं का निर्माण और संवर्द्धन

आजकल के नेता की परिभाषा यह हो गयी है कि अधिकार- प्राप्ति एवं प्रसिद्धि के लिए लालायित, जो आगे-आगे करता रहता है वह अगुवा या नेता। किन्तु पंडित जी की प्रकृति इससे न केवल भिन्न थी, अपितु एकदम दूसरे सिरे की थी। उन्हें न अधिकार का लोभ था, न प्रसिद्धि की अभिलाषा। किन्तु अपने सहयोगियों को आगे लाने और प्रकाश में प्रस्तुत करने के लिए वे निरन्तर प्रयास करते थे, चाहे बात अध्यक्ष पद की हो अथवा दल के कार्यकर्ताओं के साथ छायाचित्र (फोटो) खिचवाने की।

१९६४ ने प्रदेश-समितियों प्रस्ताव भेजे थे कि ग्वालियर अधिवेशन में दीनदयाल जी को दल का अध्यक्ष चुना जाये। केन्द्रीय महासमिति ने भी सर्वसम्मति से उनके नाम का ही अनुमोदन किया था। किन्तु दीनदयाल जी ने विनम्रता से इन्कार कर पं.बच्छराज व्यास के नाम का प्रस्ताव रखा और वह स्वीकार हो, इसके लिए सब प्रकार से प्रयत्न किया।

गुजरात में जनसंघ के प्रारंभ-काल से कार्यकर्ता रहे ज्येष्ठ नेता श्री हरिसिंह जी गोहेल ने लिखा है—"१९६२-६३ की बात है, जूनागढ़ में तीन दिवसीय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्ययन वर्ग आयोजित किया गया था। वर्ग में दीनदयाल जी तो थे ही, श्री सुंदरसिंह भंडारी और अटल बिहारी वाजपेयी जैसे अन्य अखिल भारतीय नेता भी आये थे। कार्यक्रम के अन्त में विचार रखा गया कि सबका एकत्रित फोटो लिया जाये। दीनदयाल जी फोटो खिंचवाने के लिए कतई उत्सुक नहीं थे। किन्तु कार्यकर्ताओं का विशेष आग्रह मानकर वे तैयार हो गये।

"फोटो के लिए कुर्सियाँ लगवायी गयीं। प्रायः सभी प्रमुख कार्यकर्ता स्थानापन्न हो गये। मैं एक छोटा सा कार्यकर्ता था। एक कोने में संकोच से खड़ा होकर यह सारा कौतूहल आँखों में भर रहा था। दीनदयाल जी ने शायद मुझे देख लिया। अपना स्थान ग्रहण करने से पहले वे सीधे मेरे पास आये और हाथ पकड़कर मुझे बीचोंबीच वाली कुर्सी पर उन्होंने बिठा दिया। बोले—"आप प्रांत के अध्यक्ष हैं, प्रांत के सारे कार्य के केन्द्रबिंदु हैं। फोटो में भी आपको ही केन्द्रस्थान पर रहना चाहिए।"

उनका आग्रह होता था कि सार्वजनिक सभा में उनका भाषण रखा हो, तो साथ ही उस स्थान के प्रमुख कार्यकर्ताओं के भी भाषण अवश्य रखने चाहिए। इससे दल के छोटे-बड़े कार्यकर्ताओं को आगे लाने और लोकमानस में उनका भी स्थान-निर्माण करने की ही दृष्टि थी।

दल का संगठन करते समय साथ-साथ पंडित जी मनुष्य-निर्माण का कार्य भी करते थे। दल का कार्यकर्ता उनके लिए साधन भी था और साध्य भी। कहते थे कि कार्यकर्ता कोई निर्जीव वस्तु नही होता कि पोस्टर की भांति उसे जहाँ चाहा चिपका दिया। इस संबंध में श्री रामदास कलसकर ने स्वानुभव की घटना लिखी है— प्रसंग जितना मुखर उतना ही हृदयस्पर्शी भी हैं। बात १९६८ के प्रारंभ की है। रामदास जी कलसकर को मद्रास में जनसंघ का पूर्णकालिक संगठक नियुक्त किया गया था। मद्रास जाने के बारे में दीनदयाल जी ने स्वयं रामदास जी से बात की थी। नागपुर में एक बैठक थी जिसके बाद रामदास जी का मद्रास जाने का कार्यक्रम भी निश्चित हो गया था। तभी मद्रास जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने कहा कि इन दिनों वातावरण कुछ ऐसा बन गया है कि महाराष्ट्र से किसी प्रचारक का मद्रास में आना सुविधाजनक नहीं होगा (उसी वर्ष में शिवसेना के आंदोलन ने वेग पकड़ा था और उसका लक्ष्य मद्रासी-मलयाली दाक्षिणात्य लोग थे।) मद्रास के कार्यकर्ताओं की कठिनाई को समझते हुए पं.दीनदयाल जी ने तत्काल निर्णय किया कि रामदास जी को मद्रास न भेजा जाय। बंगाल के कार्यकर्ता वहीं बैठे थे। एक पूर्णकालिक प्रचारक बंगाल में भेजा जाय, यह उनकी भी मांग थी। तब तक रामदास जी बैठक में पहुँचे नहीं थे। दीनदयालजी ने कहा—"रामदास को आने दीजिए, उनसे बात करके निश्चित करेंगे।" इस पर एक एक नेता तपाक से बोले—"इसमें रामदास से क्या बात करनी है? वे तो पूर्णकालिक प्रचारक हैं ही। उनके लिए क्या मद्रास, क्या बंगाल? आप जहाँ भेज देंगे, वहाँ जाना उनका काम है।" दीनदयाल जी ने हँस कर कहा—"अरे भाई, हमारा प्रचारक कोई निर्जीव वस्तु तो है नही। वह प्रचारक अवश्य है, किन्तु उसकी भी कोई सम्मति होती है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके एक मन भी होता है। कहाँ काम करे, यह निश्चय करने की स्वतन्त्रता मेरे विचार से तो उसे होनी ही चाहिए। उसके इतने स्वातंत्र्य को भी यदि आप स्वीकार नहीं करते, तो उसके कार्य द्वारा स्वतंत्र एवं स्वाभिमानी समाज के निर्माण की अपेक्षा आप कैसे कर सकते हैं?" दूसरे दिन रामदास जी आ पहुँचे। उनसे परामर्श कर दीनदयाल जी ने उन्हें बंगाल भेज दिया।

कार्य संघ का ही

इन संस्मरणों और कहानियों को सुनने-पढ़ने के बाद लगता है कि जनसंघ में दीनदयाल जी का पद कुछ भी रहा हो, वे संगठन-मन्त्री, महामन्त्री या अध्यक्ष रहे हों, सभी पदों पर उनके द्वारा किये गये कार्य का वर्णन करने के लिए एक शब्द सार्थक है—'संगठनकर्ता'। संगठनकर्ता किसे कहा जा सकता है? मेरे विचार में उसका काम विशिष्ट ध्येय की पूर्ति के लिए कार्यकर्ताओं का संच खड़ा करना, उस संच को कार्यप्रवण एवं गतिमान बनाना और उन कार्यकर्ताओं में आवश्यक गुणसम्पदा का निर्माण करते हुए उसे बढ़ाना—वृद्धिंगत करना—होता है। कार्यकर्ताओं की ऐसी संकलित शक्ति का निर्माण जो करता है उसे सफल संगठनकर्ता कहा जाता है। संगठनकर्ता के पद की इस दीक्षा और संगठन-व्रत को पंडित जी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से स्वीकारा था और अन्त तक वे अपने इस मूल संगठन के साथ अनन्य निष्ठा से जुड़े रहे। किंबहुना उन्होंने जनसंघ की संरचना के काम को कभी पृथक् माना ही नहीं। संघकार्य के अन्तर्गत ही उसे अपने पर पर सौंपे गये दायित्व के रूप में ही उन्होंने देखा। उसी श्रद्धा से उसे निभाया भी। उनकी यह आधारभूत निष्ठा निम्न उदाहरणों से स्वयं स्पष्ट हो जाती है:

श्री भानुप्रताप शुक्ल अनेक वर्षों तक 'पांचजन्य' के संपादक रहे हैं। उससे पहले भी उन्होंने 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन' नामक लखनऊ की प्रकाशन-संस्था में उपसंपादक के काम से लेकर विविध दायित्वों को संभाला था। जब पं. दीनदयाल जी इस संस्था के प्रमुख संपादक का काम देख रहे थे, उस काम को भी शुक्ल जी ने देखा है। इसके अतिरिक्त संघ-प्रचारक के नाते भी दीनदयाल जी से मार्गदर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य उन्हें मिला है। अतः दीनदयाल जी की इस मूलभूत संघनिष्ठा के बारे में भानु जी के संस्मरण महत्त्वपूर्ण हैं।

एक संघ-शिक्षा-वर्ग में पंडित जी उपस्थित थे। संघ के प्रचारक रहते हुए ही उनको पहले जनसंघ के संगठन-मंत्री और बाद में महासचिव पद का दायित्व सौंपा गया। अतः वे तो यही मानते थे कि इन पदों पर उनके द्वारा किया जाने वाला कार्य मुख्यतः संघ का ही काम है। इसीलिए प्रति वर्ष वे संघ-शिक्षा-वर्ग में बौद्धिक वर्ग तथा चर्चा आदि में सहभागी होते थे। वैसी योजना अवश्य बनायी जाती थी।

तो इसी कार्यक्रमानुसार १९५२-५३ में उत्तर प्रदेश में आयोजित एक संघ-शिक्षा-वर्ग में पंडित जी उपस्थित थे। इन वर्गों में चर्चासत्र बहुत महत्त्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रखता है। स्वयंसेवक इनमें निःसंकोच प्रश्न पूछा करते हैं और चर्चा लेने वाले अधिकारी भी प्रश्नों का उत्तर उतने ही खुले मन से दिया करते हैं। ऐसे एक चर्चासत्र में स्वयंसेवक आ बैठे और दीनदयाल जी ने कहा—"चलो भाई, हमारी 'ट्रायल' प्रारम्भ करो।" अभिप्राय यह था कि जो भी मन में आये, पूछो। दो मिनट सारे स्तब्ध रह गये। किसी ने न कुछ बोला, न कोई प्रश्न किया। अन्त में पंडित जी को ही उस स्तब्धता को तोड़ना पड़ा। उन्होंने कहा—"अच्छा, आप कोई प्रश्न नहीं पूछ रहे हैं न? तो चलिए मैं ही आपसे प्रश्न करता हूँ।" फिर क्या था, पंडित जी प्रश्न करते इससे पहले ही एक स्वयंसेवक खड़ा हो गया और उसने पूछा—"आप जनसंघ के नेता हैं, तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शिविर में कैसे आये हैं? आपका इससे क्या संबंध?"

पंडित जी ने हँसते-हँसते उत्तर दिया—"अरे भाई, यह तो सच है कि मैं जनसंघ का नेता हूँ। किन्तु मैं हिंदू भी तो हूँ न? मुझे हिन्दुत्व पर गर्व है। हिंदू होने और हिन्दुत्व पर गर्व अनुभव करने की इस प्रवृत्ति के कारण क्या मैं संघ में सहभागी नहीं हो सकता?" अपने उत्तर में प्रतिप्रश्न कर पंडित जी ने प्रश्नकर्ता को निरुत्तर कर दिया था। किन्तु यह कोरी वादविवाद-स्पर्द्धा तो थी नहीं, अतः अपनी भूमिका का स्पष्टीकरण भी उन्होंने ही किया। बोले—"मैं संघ का स्वयंसेवक हूँ और जनसंघ का महामंत्री भी। जीवन में ऐसी भूमिकाएं प्रत्येक को निभानी पड़ती हैं। अब देखिए, मैं जनसंघ का महामंत्री हूँ, किन्तु परिवार में अपने पिता का पुत्र भी हूँ। अब आप ही बताइए कि अपने पिता का पुत्र होने और जनसंघ का महामंत्री होने में अन्तर्विरोध कहाँ है? कोई विरोध नहीं है। उसी प्रकार मैं संघ का स्वयंसेवक और जनसंघ का महामंत्री हूँ, इसमें भी कोई अन्तर्विरोध नहीं है।" इन दोनों कामों की ओर देखने की उनकी दृष्टि इन प्रश्नोत्तरों से स्पष्ट हो जाती है। हम संघ के स्वयंसेवक हैं, यह भूमिका पं. दीनदयाल जी के हृदय से क्षण भर के लिए भी कभी दूर नहीं हुई थी। उन्होंने प्रश्न का उत्तर जिस स्पष्टता से दिया, यही दिखलाता है।

वनवास और संन्यास

इस स्मृतिशलाका का प्रारंभ करते समय कुल और कुलधर्म तथा कुलाचार, दो शब्द हमने प्रयुक्त किये हैं। उपर्युक्त उत्तर में पंडित जी ने 'मैं संघ का स्वयंसेवक हूं', यह बात जितने संकल्प और सुनिश्चय से व्यक्त की, उनके कुल और कुलधर्म का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। इस आधारभूत निष्ठा की प्रखरता का बोध कराने वाला एक और संस्मरण श्री मधुकर देव के शब्दों में—

दरभंगा के संघ-शिक्षा-वर्ग की बात है। बौद्धिक वर्ग से पूर्व दीनदयाल जी का परिचय कराते समय कहा गया कि "आज आपके सामने बौद्धिक वर्ग लेने वाले हैं पं. दीनदयाल उपाध्याय। आप पहले संघ के प्रचारक थे और आजकल जनसंघ के महामंत्री हैं।" बौद्धिक वर्ग प्रारंभ करने से पहले ही इस परिचय में दीनदयाल जी ने जो संशोधन किया वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा—"मेरा परिचय कराते समय जो कहा गया कि मैं संघ का प्रचारक था, वह ठीक नहीं है। मैं तो आज भी संघ का प्रचारक ही हूँ।" संघ और दीनदयाल उपाध्याय में ऐसा अद्वैत था। दोनों एकात्म थे। इन सहज उद्‌गारों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि क्यों वे दृढ़तापूर्वक कह सके कि पिता-पुत्र के नाते मैं जनसंघ में होकर भी संघ में आ सकता हूँ।

कुछ ऐसा ही प्रसंग श्री कपिलेश्वर साहू ने भी लिख रखा है। पटना के पास मीठापुर में संघ-शिक्षा-वर्ग था। उसमें 'संस्कृति और सुसंस्कृतता' विषय पर आपकी भाषणमाला आयोजित थी। प्रत्येक भाषण के बाद प्रश्नोत्तर होते थे। एक कार्यकर्ता ने पूछा—"आप जनसंघ में हैं, तो हमारे संघ में क्यों आये हैं?"

पंडित जी ने हँसते हुए उत्तर में प्रतिप्रश्न किया—"तो आप संघ के स्वयंसेवक हैं?"

"जी।"

"आपके पिता जी आपके परिवार-प्रमुख हैं या नहीं?"

"जी, हैं।"

"आप उनकी आज्ञा का पालन शब्दशः करते हैं न?"

"बिल्कुल।"

"संघ भी एक बड़ा परिवार ही है। आप उस परिवार के घटक हैं तो संघ-परिवार के प्रमुख की बात का भी आप पालन करेंगे ही। क्यों?"

"जी हाँ, अवश्य करेंगे।"

"तो आपने मेरा उत्तर दे दिया है। श्रीराम ने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए क्या चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार नहीं किया था? यही हमारी परम्परा है और संस्कृति भी। राम के लिए वनवास होगा तो हमारे लिए नगर में रहकर संन्यास है।"

संघ का सामर्थ्य बढ़ायें

जनसंघ का काम करने पर भी मूलतः वे संघ का ही काम कर रहे हैं, उनकी इस श्रद्धा को और स्पष्ट करने वाली एक घटना श्री भानुप्रताप शुक्ल ने बतायी है। १९५४ में बरेली में लगे संघ-शिक्षा-वर्ग की बात है। जनसंघ हाल ही में अर्थात् लगभग तीन ही वर्ष पूर्व स्थापित किया गया था। संघ के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता जनसंघ का काम कर रहे थे। सामान्य स्वयंसेवकों में इसी बात की प्रायः चर्चा होती थी। वर्ग में पंडित जी एक बैठक ले रहे थे। एक कार्यकर्ता ने कुछ व्यग्रता से उनसे प्रश्न किया-

"पंडित जी, क्या आपको नहीं लगता कि आपके दल के कारण संघ की बहुत हानि हो रही है? मुझे तो लगता है कि इससे संघ की प्रगति मानो कुंठित-सी हो गयी है। आपका विचार क्या है?"

प्रश्न कुछ अनपेक्षित था। किन्तु पंडित जी ने उस कार्यकर्ता का समाधान जिस ढंग और तर्कपूर्ण रीति से किया, वह ध्यान देने योग्य है। पंडित जी ने उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्यकर्ता से पूछा—"भाई, मेरे दल से आप इतने रुष्ट क्यों हैं? इतना क्रोध आपको क्यों आता है? ये प्रतिप्रश्न करते समय उनके मुख पर मुस्कान थी।"

कार्यकर्ता ने कहा—"क्या आपको नहीं लगता कि आपके जैसे अनुभवी और कुशल कार्यकर्ता संघ का ही काम करते रहते तो संघ का काम बहुत बढ़ जाता? संघ के एक से एक बढ़िया कार्यकर्ता जनसंघ का काम करते रहें तो उसका संघ के कार्य पर प्रभाव नहीं होगा, यह कैसे कहा जा सकता है?"

पंडित जी क्षण भर मौन रहे, किन्तु तुरन्त उन्होंने पूछा—

"क्यों जी, आप कितने भाई हैं?"

"हम पांच भाई हैं।"

"आपके सबसे बड़े भाई क्या काम करते हैं?"

"वे अभियन्ता (इंजीनियर) हैं।"

"उनसे छोटा?"

"उनसे छोटा मैं हूँ। मैं शिक्षक हूँ।"

"आपसे छोटा?"

"वह अभी पढ़ रहा है।"

"आपके पिता जी भी हैं न?"

"जी हाँ। परिवार की देखभाल वे ही करते हैं।"

संवाद समाप्त हुआ। पंडित जी हँसे और बोले—"मिल गया न आपके प्रश्न का उत्तर?"

कुछ असमंजस में पड़े उस कार्यकर्ता ने पूछा—"पंडित जी कुछ समझाकर बताइए।" पंडित जी ने कहा—"देखिए, आपके एक भाई अभियन्ता हैं। आप शिक्षक हैं। दोनों ने भिन्न व्यवसाय आरम्भ किये हैं। तो आपके परिवार की स्थिति इससे सुधरी है या बिगड़ी है?"

"सुधरी है।"

"तो फिर बताइए कि संघ के कार्यकर्ता विभिन्न कार्यक्षेत्रों में फैल जाते हैं, तो संघ की स्थिति सुधरी मानी जानी चाहिए या बिगड़ी हुई?" इसके आगे पंडित जी द्वारा कहा गया वाक्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा—"मेरे भाई, दिन भर हम कहीं भी काम करते हों, तब भी दिन ढलने पर घर आकर अपनी कमाई से हम परिवार-प्रमुख की शक्ति बढ़ाते ही हैं। संघ के विभिन्न कार्यों का फल यदि एक ही स्थान पर संचित होता हो, तो संघ दुबला हो रहा है कैसे कहा जा सकता है? हमारा ध्येय मातृभूमि का नाम सभी क्षेत्रों में उज्ज्वल करना ही तो है न? हम जनसंघ का काम करते हों और कुछ भिन्न भाषा बोलते हों, तब भी मूल लक्ष्य हमारी आँखों से कभी ओझल नहीं होता।"

इतना कहने के बाद पंडित जी कुछ गंभीर होकर बोले—"किन्तु मैं आपको एक बात और बताता हूँ। यहाँ एकत्रित संघ-बंधुओं की इच्छा यदि ऐसी है कि मैं फिर से संघ का ही कार्य करूँ और आज मैं जो कर रहा हूँ उससे यदि आपको लगता है कि संघ की हानि हो रही है, तो मेरे वह काम करते रहने में क्या तुक है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं फिर से संघ-शाखा बढ़ाने के काम में लग जाता हूँ।" फिर कुछ रुककर उन्होंने पूछा—"बोलिए, क्या निर्णय है आपका?"

यह प्रसंग यहाँ कुछ विस्तार से इसलिए दिया कि संघ-जनसंघ का मूलभूत अद्वैत स्पष्ट हो जाये और साथ ही दीनदयाल जी का चिन्तन भी।

'मैं' को भुलाये हुए नेता

उनके व्यक्तित्व में संघ के इस अद्वैत को स्पष्ट करने वाले दो और उदाहरण हैं। संघ-स्वयंसेवकों के मन में उनके प्रति कितना प्रगाढ़ प्रेम था, उसे ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं। हैदराबाद के पास खम्मम् में जनसंघ का अधिवेशन था। अधिवेशन का मार्गदर्शन करने के लिए दीनदयाल जी आने वाले थे। स्थानीय कार्यकर्ताओं ने अधिवेशन की तैयारी बहुत धूमधाम से की थी। नगर में से शोभायात्रा निकालने की भी योजना थी। मार्ग और चौराहों को सुशोभित किया गया था। पांचजन्य के संपादक श्री भानुप्रताप शुक्ल भी इस अधिवेशन के समाचार-संकलन करने गये थे। जुलूस के मार्ग का निरीक्षण करने की दृष्टि से वे एक बार उस पर से हो आये। एक स्थान पर उन्होंने देखा कि संघ की काली टोपी पहने कुछ कार्यकर्ता स्वागत-द्वार खड़ा कर रहे हैं। शुक्ल जी ने उनसे पूछा—"भाइयो, यह आप लोग क्या कर रहे हैं? बात क्या है? क्या कोई बड़ा नेता आने वाला है?" उन स्वयंसेवकों का मुखिया आगे आया और बोला—"क्या आपको पता नहीं है? आज इस एक कोने में बसे गाँव का भाग्य जागा है। यहाँ पं. दीनदयाल उपाध्याय आने वाले हैं।"

शुक्ल जी ने पूछा—"क्या वे ही, जो जनसंघ के नेता हैं?" कार्यकर्ता ने 'हाँ' कहा तो यों ही उन्हें चिढ़ाने के लिए भानु जी ने कहा—"क्यों जी, वे तो जनसंघ के नेता हैं। उनके आगमन से जनसंघ के कार्यकर्ता उत्साहित होते हों तो बात समझ में आ सकती है, किन्तु आप लोग तो संघ के स्वयंसेवक दिखाई देते हैं, आपको किसलिए इतना उत्साह आया है?"

प्रश्न की मार उन कार्यकर्ताओं के ध्यान में आ गयी। उनके मुखिया ने कहा—"संघ-जनसंघ में अन्तर करने की यह बीमारी आप उत्तर प्रदेश वालों में है। हम तो कोई अन्तर मानते नहीं। प्रत्युत्, हमारा एक स्वयंसेवक अखिल भारतीय स्तर का नेता बन गया है, इसका हमें गर्व है। अजी, हमारा एक स्वयंसेवक दिग्विजय करता है तो इसका हर्ष हमें नहीं तो और किसे होगा? उनका स्वागत तो घर वाले ही करेंगे।" इस उत्तर में व्यक्त भावना पर हमें ध्यान देना चाहिए।

दिल्ली के पत्रकार श्री बापूराव लेले ने भी दीनदयाल जी की इस मूलभूत निष्ठा के बारे में एक संस्मरण सुनाया। जनसंघ की एक बैठक हो रही थी। दोपहर में भोजन के समय ध्यान आया कि व्यवस्था अपेक्षा के अनुसार नहीं हो पायेगी। फिर दौड़धूप प्रारम्भ हो गयी। किसी भी होटल में एकदम १००-१५०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोगों का प्रवंध होने की संभावना नहीं थी। कहीं कुछ गड़बड़ है, यह बात पंडित जी के ध्यान में आ गयी। उन्होंने पूछताछ की तो सारी बात समझ में आ गयी। उन्होंने कहा—"देखिए, दस स्थानों में भागदौड़ करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम लोग सीधे झण्डेवाला (संघ का दिल्ली-कार्यालय) जाकर वहाँ जो भी उपलब्ध होगा सब मिलकर बाँट लेंगे।" इतना बताकर उन्होंने आगे कहा—"झण्डेवाला जाना अच्छा रहता है। वहाँ जाने से आपका मस्तिष्क ठिकाने रहता है।" कार्यकर्ताओं के मस्तिष्कों को ठिकाने रखने के लिए संघ-कार्यालय में जाना पंडित जी की नीति ही नहीं, उनके व्यक्तित्व का अंग था।

संघ के वरिष्ठ स्तरों में भी पंडित दीनदयाल जी का स्थान महत्त्वपूर्ण था। संघ की विचारधारा एवं कार्यप्रणाली के वे न केवल अध्ययनशील जानकार, अपितु उत्कृष्ट भाष्यकार भी होने के कारण संघ के अधिकारी-शिक्षा-वर्गों में उनके बौद्धिक वर्ग और चर्चा-सत्रों में चर्चाओं का आयोजन तो होता ही था, किन्तु इससे भी महत्त्व की बात यह थी कि उन्होंने अपने जीवन को संघ के आदेशानुसार ढाला था। संघ अपने स्वयंसेवकों, कार्यकर्ताओं तथा संगठनकर्ताओं में जिन गुणों की अपेक्षा करता है, वे सारे गुण उन्होंने अपने अन्दर आत्मसात् किए थे। संघ के एक ज्येष्ठ नेता श्री दादाराव परमार्थ अपने बौद्धिक वर्गों में एक प्रश्न सदैव पूछा करत थे कि "स्वयंसेवक संघ में तो आते हैं, किन्तु स्वयंसेवकों में संघ कितना है?" कभी-कभी मन में आता है कि इस प्रश्न का उत्तर पंडित जी ने क्या दिया होता ! उनके विनयशील और अनाग्रही स्वभाव के अनुसार शायद उन्होंने कहा होता—"भाई, अभी तो मुझे काफी लम्बा पथ पार करना है।" किन्तु उनके सहयोगियों अर्थात् संघ के कार्यकर्ताओं से पूछा जाय तो वे क्या कहेंगे? उन सब के प्रतिनिधि के नाते विद्यमान सरसंघचालक श्री बालासाहेब देवरस जी से ही क्यों न पूछा जाय? दीनदयाल जी जब संघ के सह-प्रांत प्रचारक थे, तब पू. बाला साहेब सरकार्यवाह थे। अनेक वर्ष साथ-साथ कार्य करने के बाद उन्हें पंडित जी के बारे में क्या लगता था?

पूजनीय श्री बालासाहेब कहते हैं—"दीनदयाल जी जब भी नागपुर आते, संघ-कार्यालय में रहने वाले सभी की दृष्टि में, यहाँ तक कि रसोईघर में काम करने वालों की दृष्टि में भी, वह एक आनंद-पर्व होता था। मैं उन्हें ३० वर्ष से जानता था। किन्तु कभी उन्हें यह कहते नहीं सुना कि 'मैंने यह किया, मैंने वह किया।' ऐसी आत्मस्तुति उन्होंने कभी नहीं की। किंबहुना उनके मुँह से 'मैं' शब्द सहसा निकलता ही नहीं था। उनकी ओर देखने से हमें डा. हेडगेवार जी का स्मरण हो आता था। डा. हेडगेवार आकर्षक व्यक्तितत्व के धनी नहीं थे, न ही धाराप्रवाह वक्ता। किन्तु उनकी अनन्य कार्यनिष्ठा के कारण लोग उनकी ओर लोहचुंबक की भांति खिच जाते थे, आकर्षित हो जाते थे। पंडित दीनदयाल जी के प्रति लोगों को इसी प्रकार का आकर्षण होता था।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रांतदर्शी वाणी

इसी परिप्रेक्ष्य में साप्ताहिक 'विवेक' के श्री ब.ना. जोग द्वारा बताया गया एक संस्मरण उल्लेखनीय है। दीनदयाल जी की संघ के संस्कारों की ही भांति उसके आंतरिक सामर्थ्य में भी आस्था थी। १९६६ में देश में राजनीतिक अस्थिरता आने लगी। 'अब आगे क्या होगा?' इस प्रश्न की चर्चा सर्वत्र होने लगी। दीनदयाल जी अनेक बार 'विवेक' कार्यालय में आया करते थे। उनके आने पर सदैव मुक्त भाव से चर्चा होती थी। जोग कहते हैं—"इंदिरा गांधी का शासन प्रारम्भ हो गया था। अमरीकी दबाव के कारण रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा था। वातावरण में चरमराहट थी। ऐसे वातावरण में एक दिन दीनदयाल जी 'विवेक' के कार्यालय पधारे तो इसी विषय को लेकर चर्चा प्रारंभ हो गयी। मैंने उनसे पूछा—'देश में यदि संभ्रम और अराजकता की स्थिति उत्पन्न होगी और देश में छिपे शत्रु तथा विदेशी शक्तियाँ इसका लाभ उठायेंगी, तो हम लोग क्या करेंगे?'

"वे क्षण भर चुप रहे। किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने कहा—"आप यही कहना चाहते हैं न, कि सारे उपाय हारने के बाद देश में तानाशाही या सैनिक शासन आयेगा? किन्तु आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं? संघ तो है। ऐसे कठिन प्रसंग में संघ ही देश को उबारकर आगे ले जायेगा।" दीनदयाल जी के इस कथन का भरोसा हम लोगों को नहीं हुआ। शायद हमारे मुखों पर उस अविश्वास का सूचक हास्य भी उभरा। उसे देखते ही दीनदयाल जी एकदम गंभीर हो गये। बोले—"मैंने आपके सामने सत्य ही रखा है। संघ के सामर्थ्य का पूरा बोध मुझे है। कम से कम उस विषय में आप मेरा भरोसा कर सकत हैं।" दीनदयाल जी के उन उद्गारों की सार्थकता दस वर्ष में ही देश ने अनुभव की। आपातकाल में संघ ही सारी परिस्थिति पर राष्ट्र को विजयी बना सका।"

राष्ट्राय इदम्, इदं न मम

पूजनीय बालासाहेब ने दीनदयाल जी के एक महत्त्वपूर्ण गुण का उल्लेख कर संगठनशास्त्र के एक मूलभूत सिद्धान्त की ओर अनजाने में ही हमारा ध्यान दिलाया है कि "आदर्श संगठनकर्ता तो वही है जो 'इदं न मम' कहता हुआ अपने सर्वस्व की आहुति तो चढ़ा ही देता है, किन्तु मैंने कुछ किया है, इस भावना का स्पर्श भी जिसके मन को नहीं होता।" अहंकार को भुलाना, अभिमान न करना, ये गुण इसके लिए आवश्यक होते हैं और उन्हें प्रयत्नपूर्वक अपने अन्दर लाना पड़ता है। वे दीनदयाल जी ने अपने जीवन में कैसे उतारे थे, इसके बारे में एक संस्मरण लखनऊ के कार्यकर्ता श्री वसंत अण्णा वैद्य का है। श्री वसंतराव वैद्य दीनदयाल जी को अपने बचपन से जानते थे। जब वे बाल स्वयंसेवक थे तब शिविर में दीनदयाल जी अधिकारी होते थे। वसंतराव वैद्य का स्वर बहुत सुरीला था। शाखा में गीत गाने-गवाने का काम वे ही किया करते थे। एक गीत में मातृभूमि की भक्ति की भावना अत्यंत प्रभावकारी शब्दों में व्यक्त की गयी थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गीत सुनते-सुनते पंडित जी की आँखों से आँसू बहते वसंतराव जी ने देखे थे। इतना संवेदनशील था पंडित जी का मन। 'भारत माता की जय' उनकी दृष्टि में केवल प्रार्थना का अन्तिम भाग नहीं था, अपितु 'भारत माँ ! तेरी जय हो, विजय हो' उनकी जीवन-निष्ठा थी। मेरा सब कुछ मातृभूमि की सेवा में समर्पित हो, यह भावना उनके मन में इतनी प्रबल थी कि 'मेरे सारे गुण भी उसके चरणों में समर्पित हैं' कहने वाले सावरकर जी की स्मृति हो आती। सावरकर जी ने कहा था—''ऐ मातृभूमि, तुझको मन समर्पित। वक्तृत्व वाग्विभव भी तुझको ही अर्पित। अर्पण तुम ही को नव काव्यधारा। साहित्य का सृजन भी तुम पर ही वारा।।'' दीनदयाल जी की समर्पण-भावना का 'तरंग-दैर्घ्य' (वेवलेंग्थ) भी ठीक यहीं और इसी सुर के साथ एकरूप हो गया था।

वैद्य जी कहते हैं कि पीलीभीत का प्रवास समाप्त कर दीनदयाल जी लखीमपुर आये थे। उनका सामान संघ-कार्यालय में रखा था। उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता होती तो वैद्य जी लाकर देते थे। उनके कहने पर वैद्य जी एक लकड़ी का खोखा उठा लाये। उस खोखे में से एक कागज उन्होंने निकाल लिया और शेष सभी कागज-पत्र जला डालने का आदेश दिया। उन्होंने क्या जला डालने के लिए कहा है, यह जानने के लिए वैद्य जी ने यों ही उन कागजों पर दृष्टि डाली। देखा तो वे दीनदयाल जी द्वारा अपने शिक्षाकाल में अर्जित विभिन्न प्रमाण-पत्र थे। अनेक परीक्षाएं उन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं। वे कागज उस बात के साक्षी थे। उनको जला डालने को वैद्य जी का मन बिल्कुल नहीं कर रहा था। उन्होंने पंडित जी से कहा—''पंडित जी, इन प्रमाण-पत्रों को रहने दीजिए न! आपके उज्ज्वल यश के साक्षी हैं ये।'' पंडित जी द्वारा दिया गया उत्तर बहुत ही मार्मिक था और प्रेरक भी। उन्होंने कहा—''मैंने अपना सारा जीवन मातृभूमि के चरणों में अर्पित कर दिया है। इसलिए इन अनुशंसा-पत्रों की अब मुझे कतई कोई आवश्यकता नहीं है।''

श्री वैद्य ने आगे लिखा है—''एक-एक प्रमाण-पत्र अग्नि की भेंट चढ़ाते हुए मुझे असीम पीड़ा हो रही थी। किन्तु पंडित जी का मुखमण्डल एक-एक प्रमाण-पत्र की होली के साथ दीप्तिमान होकर निखर रहा था।'' यहाँ फिर वीर सावरकर जी के मृत्युपत्र की पंक्तियों का स्मरण हो आता है—''जलाकर यह स्वार्थ, हम हो गये कृतार्थ!''

सच्चा स्वयंसेवक

अपने जीवन को इस प्रकार कृतार्थ या सार्थक बनाने का भाग्य बहुत ही थोड़े लोगों को प्राप्त होता है। उन थोड़े लोगों में पंडित जी को स्थान प्राप्त है। किन्तु यह स्थान उन्हें सहजता से प्राप्त नहीं हुआ। संघ-कार्य के प्रारंभिक काल में प्रचारकों को बहुत कष्ट झेलने पड़ते थे। उन्होंने सब कष्ट हँसते-हँसते झेले और संघ-कार्य के लिए आवश्यक सभी परहेज दक्षता से रखे। सादगी, निरहंकारिता, लोकसंग्रह की भावना, कष्ट उठाने की सिद्धता आदि बीसियों गुण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंडित जी में कैसे थे, यह प्रकट करने वाली कई घटनाएं उनके सहयोगी आज भी बताते हैं।

आगरा की एक घटना इसी प्रकार उनके व्यक्तित्व के एक और पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करती है। गरमी के दिन थे। कार्यालय में एक बैठक बुलायी गयी थी। निश्चय किया गया कि बैठक छत पर हो। पंडित जी ने दो कार्यकर्ताओं को दरी ले आने के लिए नीचे भेजा। इससे पहले कि वे दरी ले आते, दीनदयाल जी ने सारी छत बुहार कर साफ कर रखी थी। तब वे सह-प्रांत-प्रचारक थे। किन्तु स्वयंसेवक शब्द की परिभाषा यदि यही है कि अधिकारपद को मात्र एक व्यवस्था माने, अपना सच्चा अधिकार 'स्वयंसेवक' बने रहना ही समझे, स्वयं काम के लिए अग्रसर हो, तो इस उदाहरण के द्वारा पंडित जी ने उस परिभाषा को चरितार्थ कर दिखाया है। स्वयंसेवक से अपेक्षित प्रत्येक गुण के बारे में यही कहा जा सकता है। स्वयंसेवकत्व एक व्रत है और हमने उसे स्वीकार किया है, इस बात को उन्होंने सपने में भी भुलाया नहीं था। इसके कितने उदाहरण प्रस्तुत किये जायें?

अन्तर्बाह्य स्वदेशी

'स्वदेशी' संघ की दृष्टि में प्रचार का भाग नहीं, आचरण का विषय है। संघ के संस्थापक स्व. डा. हेडगेवार जी ने अपना सार्वजनिक जीवन लोकमान्य तिलक द्वारा प्रस्तुत चतु:सूत्री के वातावरण में ही प्रारंभ किया था। वे स्वयं तो स्वदेशी के कट्टर पक्षधर थे ही, संघ के स्वयंसेवक भी आचरण में स्वदेशी का ही व्रत रखें, यह उनका आग्रह था। पूजनीय श्री गुरु जी भी इसके आग्रही थे। एक बड़े नेता के घर भोजन करने के बाद वे हाथ धोने के लिए गये और जब हाथ धोने के लिए प्रस्तुत किया गया साबुन विदेशी होने का आभास हुआ तो गुरु जी ने उसे लिया नहीं। अपने बौद्धिक वर्गों में वे स्वदेशी के व्रत का पालन करने का आग्रह व्यक्त किया करते थे। पंडित जी पर भी ये संस्कार पक्के थे। उनके एक सहयोगी श्री बाबूराव पालधीकर एक बार दाढ़ी बना रहे थे। उन्होंने जो साबुन की टिकिया निकाल रखी थी, उसे उठाकर पंडित जी ने खिड़की से बाहर फैंक दिया। बाबूराव का दाढ़ी बनाना पूरा नहीं हुआ था, अत: वे पंडित जी के इस कृत्य से एकाएक चौंक से गये और उनकी ओर मुँह बाए देखने लगे। उन्हें कुछ आश्चर्य हो रहा था। शायद लगा कि पंडित जी को परिहास करने की सूझी है। किन्तु बाद में उनके ध्यान में आया कि वह साबुन विदेशी था और इसीलिए पंडित जी ने फैंक दिया था। पालधीकर जी ने लिखा है—"उस दिन मानो मुझे यह पाठ ही सिखाया गया कि संघ के प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए स्वदेशी का व्रत रखना बंधनकारी है और इस विषय में कोई समझौता नहीं किया जाना चाहिए।"

स्वदेशी एक व्रत तो है ही, किन्तु वह जीवननिष्ठा भी बनना चाहिए—यह था दीनदयाल जी का आग्रह। इस संदर्भ में श्री गिरिराजकिशोर का एक संस्मरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखने योग्य है। पंडित जी तब उत्तर प्रदेश के सहप्रांत-प्रचारक थे। मैनपुरी में कुछ कार्यक्रम निश्चित किया जा रहा था। उसका पत्राचार चल रहा था। डा. पुरंग मैनपुरी के नगर-कार्यवाह थे। उनका पत्र आया था। गिरिराज जी उसका उत्तर लिख रहे थे। लिखकर उन्होंने उत्तर पंडित जी का दिखाया। पंडित जी ने उसे पढ़कर फाड़ दिया। गिरिराज जी की समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर उन्होंने क्या गलत लिखा था। उन्होंने प्रश्नार्थ मुद्रा में पंडित जी की ओर देखा। पंडित जी ने कहा—"जब डा. पुरंग और आप—दोनों हिंदी में बोल और लिख सकते हैं तो पत्राचार अंग्रेजी में किसलिए?"

स्वदेशी का प्रचलित अर्थ था—विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग। किन्तु इतना सीमित अर्थ दीनदयाल जी को अभिप्रेत नहीं था। स्वदेशी की नींव जहाँ स्वदेशाभिमान में अर्थात् भावनात्मक थी, वहीं वह आर्थिक भी थी। देश में बनने वाली हर वस्तु को स्वदेशी मानने तक ही उनकी दृष्टि सीमित नहीं थी। स्व.श्री बाबासाहब आपटे ने दीनदयाल जी के साथ हुए अपने संभाषण का संस्मरण हेतुत: लिख रखा है। उनसे बातचीत में दीनदयाल जी ने कहा था—"मैं उन वस्तुओं को, जिनका स्वदेश में निर्माण तो किया जाता है किन्तु उनका सारा लाभ (profit) विदेशों को भेज दिया जाता है, स्वदेशी मानने को तैयार नहीं हूँ।" ऐसी थी उनकी 'शत प्रतिशत' स्वदेशनिष्ठा। स्वदेशी की उनकी परिभाषा में उपभोग की वस्तुओं के साथ भाषा, वेष, शिष्टाचार के रीति-रिवाज आदि सभी बातों का समावेश होता था। जनसंघ था तो एक राजनीतिक दल, किन्तु उसका भारतीय संस्कृति के साथ अटूट नाता था। इसका कारण है उसके नेता पं. दीनदयाल जी की यह प्रखर स्वदेशी वृत्ति। देश की समस्याओं का समाधान विदेशी दर्शन (इज्म्स) का आधार लेकर नहीं किया जा सकता, यह उनकी आस्था भी उनकी स्वदेशीनिष्ठा की ही द्योतक थी। किंबहुना उनके द्वारा प्रवर्तित एकात्म मानववाद का प्रतिपादन भी उसी स्वदेशी भावना से साकार हुआ होगा।

समय की पाबंदी का आग्रह

किन्तु यहाँ हम देख रहे हैं कि दीनदयाल जी के व्यक्तित्व को ढालने में संघ-संस्कारों का स्थान क्या था। सादगी, स्वदेशी, कष्ट उठाने की तत्परता के साथ-साथ संघ-संस्कारों में नियमितता, हर बात को नियत समय पर, पूर्वनिश्चयानुसार पूरा करने का अनुशासन भी महत्त्वपूर्ण है। आजकल की परिभाषा में कहा जाय तो यह 'संघ-संस्कृति' का एक अभिन्न अंग माना जाता है। किन्तु संगठन का यह कुलधर्म एक दिन में साकार नहीं हुआ है। प्रतिदिन सातत्यपूर्वक आग्रह रखे जाने के कारण ही यह संस्कार अब देश भर में लाखों स्वयंसेवकों ने पक्का ग्रहण कर लिया है। इसके लिए सरसंघचालक से लेकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सामान्य स्वयंसेवक तक सबको इस नियमितता और समय की पाबंदी की घुट्टी पीनी-पिलानी पड़ी है। आद्यसरसंघचालक डा. हेडगेवार की वह प्रसिद्ध घटना तो उनके चरित्र का एक अपरिहार्य अंग ही बन गयी है। रविवार प्रातः नागपुर संघशाखा का सांघिक था और डाक्टर हेडगेवार नागपुर से पन्द्रह मील दूर एक गाँव में संघप्रचार के लिए गये थे। शनिवार की रात बैठक देर तक चलती रही। वापस आने की गाड़ी निकल गयी। दूसरे दिन प्रातः संघस्थान पर नियत समय पर उपस्थित रहना आवश्यक था। डाक्टर जी की लगन उन्हें चुपचाप बैठने नहीं दे रही थी। वे उसी क्षण उस गाँव से रात में ही पैदल चल पड़े और पौ फटने से पहले नागपुर संघस्थान पर समय पर उपस्थित रहे। पूजनीय गुरु जी के पंजाब-प्रवास का उदाहरण भी क्या ऐसा ही नहीं है? धुआँधार वर्षा हो चुकी थी। रेल यातायात ठप्प हो गया था। पुल अयोग्य हो गया था। गाड़ी रुक गयी थी। पुल के नीचे से बाढ़ का पानी रौद्र रूप धारण किये उछलता-गरजता बह रहा था। पुल बह गया था, केवल लोहमार्ग ही झूल रहा था। पुलिस और रेल अधिकारियों ने परामर्श दिया कि इस मार्ग से न जायें। साथ जा रहे स्वयंसेवकों और संघचालक जी ने कहा—"आगे का दौरा रद्द किये देते हैं।" किन्तु गुरुजी को आगे वाले गाँव का दृश्य दिखाई दे रहा था। स्वयंसेवक और नागरिक एकत्रित हुए होंगे। वे निराश हो जायेंगे। असुविधा भी उन्हें होगी। गुरुजी ने धोती ऊपर को संवार ली और मन को एकाग्र करते हुए उन्होंने झूलती रेल पर पैर रखा। कुछ ही मिनटों में वे उस 'काल नदी' की बाढ़ को पार कर गये। ऐसे संस्कारों में दीनदयाल जी पले थे। इसीलिए वे भी समय के पाबंद रहने का, नियमितता का संघ का संस्कार संजोये सारा काम करते थे। भगवान देव प्रभाकर द्वारा बतायी गयी यह घटना इसकी प्रतीति देने वाली है।

१९६० के शायद फरवरी की बात है। एलनाबाद मंडी में किसान-सम्मेलन आयोजित किया गया था। प्रातः नौ बजे किसानों का जुलूस निकलने वाला था। उसका नेतृत्व पं. दीनदयाल जी करेंगे, ऐसी घोषणा की जा चुकी थी। सम्मेलन में अपेक्षा से अधिक किसान आये थे। किन्तु पुलिस ने एलनामंडी में धारा १४४ लगा दी। कार्यकर्ताओं को ऐसी बातों का अनुभव नहीं था। वे हड़बड़ा गये। पंडित जी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु पंडित जी को विलम्ब होता जा रहा था। कुछ कार्यकर्ताओं को जीप लेकर दौड़ाया गया। जीप पंडित जी के आगमन के मार्ग पर दौड़ायी जा रही थी कि शायद पाँचवें या छठे मील पर पंडित जी को लोगों ने पैदल आते देखा। बात यह हुई थी कि पंडित जी जिस जीप में आ रहे थे, वह मार्ग में बिगड़ गयी। उसे ठीक करने में अधिक समय लगने वाला था। तो पं. दीनदयाल जी उठे और पैदल ही चले आ रहे थे। पाँच-छह मील चलने के बाद एलनाबाद मंडी से आ रही जीप उन्हें मिली और पंडित जी ठीक समय पर पहुँच गये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसे तो बीसियों संस्मरण हैं। एक कार्यकर्ता की मोटर साइकिल पर पिछली सीट पर बैठकर आते समय उनके पाँव में चोट आ गयी। त्वचा छिल गयी और मांस का लोथड़ा बाहर आ गया। किन्तु दस मील के प्रवास में पंडित जी ने उफ् तक नहीं की। गन्तव्य पर पहुँचते ही जब उन्हें लंगड़ाते देखा, तब कहीं कार्यकर्ताओं के ध्यान में आया कि क्या हुआ है। उन्हें मोटर साइकल पर लाने वाला वह कार्यकर्ता तो बेचारा ग्लानि के मारे गड़ा जा रहा था। उसने पूछा—"पंडित जी, आपके पाँव में इतना घाव हो गया था तो आपने मुझे रुकवा क्यों नहीं दिया? मार्ग में ही कहीं हम मरहम-पट्टी करवा लेते।" किन्तु इस प्रश्न में ही तो इसका उत्तर भी निहित था। ठीक इसीलिए उन्होंने पाँव में हुए घाव की बात उस कार्यकर्ता को नहीं बतायी थी कि मरहम-पट्टी करने में समय बिताते तो नियत स्थान पर नियत समय में पहुँचना असंभव हो जाता। इसीलिए उस घाव को चुपचाप सह लिया था। कल्पना की जा सकती है कि उपस्थित लोगों पर ऐसी बातों की कितनी गहरी छाप अंकित होती होगी।

डींग हाँकना अस्वीकार

संघ के कार्यप्रेरक संस्कारों में प्रसिद्धिविमुखता का संस्कार महत्त्वपूर्ण माना जाता है। निरहंकारी पंडित जी ने तो इस संस्कार को पूर्णतः आत्मसात् कर लिया था। वे अपने आपको केवल काम करने का पात्र मानते थे। काम करके अलग हो जाना उनकी प्रवृत्ति बन गयी थी। आंध्र प्रदेश में खम्मम् में हुए अधिवेशन के समय की बात है। श्री भानुप्रताप शुक्ल बताते हैं—"वहाँ कार्यकर्ताओं ने विशाल शोभायात्रा निकालने की सारी सिद्धता कर ली थी। इसके लिए सजायी गयी जीप पर अध्यक्ष के साथ पंडित जी को भी बिठाने की कार्यकर्ताओं की योजना थी। कुछ कार्यकर्ता आंध्र प्रदेश जनसंघ के संगठनमनंत्री श्री गोपालराव ठाकुर के साथ पंडित जी से इस बात का अनुरोध करने पहुँचे।" पंडित जी ने विनम्रता से किन्तु दृढ़तापूर्वक सुझाव ठुकरा दिया। उसे अस्वीकार करते हुए उन्होंने बताया—"स्व. भैयाजी दाणी एक उदाहरण दिया करते थे, जो मुझे सदैव स्मरण रहता है। वे कहा करते थे कि अन्ततः चपरासी तो चपरासी ही होता है, कोई सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश का तो कोई किसी तहसीलदार का। शायद दोनों के वेष में थोड़ा-बहुत अन्तर होता हो, किन्तु क्या उनकी श्रेणी में कोई अन्तर पड़ता है?" यह कहानी सुनाकर पंडित जी सुझाव देने आये कार्यकर्ताओं की ओर देखकर हँसने लगे। श्री ठाकुर सहित सभी कार्यकर्ता कुछ असमंजस में पड़ गये। इस पर दीनदयाल जी ने कहा—"आप लोग इस प्रकार क्यों देख रहे हैं मेरी ओर? भाई, दल का अध्यक्ष तो अध्यक्ष ही होता है और मंत्री एक मंत्री। वह भला अध्यक्ष के साथ अपनी भी डींग हाँकता हुआ शोभायात्रा में कैसे बैठ सकता है? आपको मेरा सम्मान ही करना हो तो आप बस इतना ही कह सकते हैं कि यह प्रधान न्यायाधीश का चपरासी है। क्या आपने कहीं देखा है कि न्यायाधीश और उनका चपरासी साथ-साथ कुर्सी लगाकर विराजमान हुए हैं?"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीनबंधु दीनदयाल

सादगी भी पंडित जी का एक महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्य था। 'सादा रहन-सहन और उच्च विचार' महान पुरुषों का एक लक्षण माना गया है। दीनदयाल जी का रहन-सहन बहुत ही सादगी भरा था। वेषभूषा भी सादी हुआ करती थी। उल्लेखनीय बात यह है कि यह सब वे अकृत्रिमता से करते थे। प्रवास में भी उनकी यह सादगी सदा ही देखी जा सकती थी। गुजरात के प्रवास में एक बार उन्हें प्यास लगी। स्टेशन पर एक प्याऊ था। पंडित जी धोती सँवार कर उसके सामने जा बैठे और दोनों हाथों की अंजुली बनाकर पानी पी आये। अहंता की इस भावना ने उन्हें स्पर्श तक नहीं किया कि मैं एक अखिल भारतीय राजनीतिक दल का वरिष्ठ पदाधिकारी हूँ, तो कैसे स्टेशन के प्याऊ के सामने बैठकर पानी पीऊँ? इसी प्रकार लखनऊ में बाल कटवाने के लिए निकले तो सड़क के किनारे बोरी बिछाकर बैठे नाई के सामने ईंट पर बैठने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ। बात यों हुई कि पंडित जी दौरा पूरा कर लौटे थे। कुछ ही समय बाद उन्हें दूसरे दौरे पर निकलना था। बीच के समय में क्यों न सिर के बढ़े हुए बाल कटवा लिये जायें, ऐसा सोचकर वे कार्यालय से निकले। किन्तु किसी भी 'सैलून' में तुरन्त स्थान मिलना संभव था नहीं। सभी में भीड़ थी। इसलिए वे आगे निकले तो चौराहे के पास एक नाई ग्राहक की प्रतीक्षा में बैठा देखा। बस, उन्होंने सड़क के किनारे बैठकर अपने बाल कटवा लिये। बैठने के लिए रखी हुई दो ईंटों का आसन ही पर्याप्त माना। स्वाभाविक था कि इस 'कटिंग' की 'क्वालिटी' सड़कछाप ही थी। किसी ने पंडित जी से इसके बारे में पूछा तो पंडित जी ने इस चलते-फिरते 'घुम्मा सैलून' की बात उसे बता दी और कहा—"मेरे पास समय कम था और उसके पास ग्राहक नहीं था। दोनों की बात बन गयी।" किन्तु उस बेचारे गरीब कारीगर को भी अवसर प्रदान करने की प्रसन्नता उनके मुखमण्डल पर देखते ही बनती थी।

पंडित जी का सारा चयन ही इस प्रकार का होता था। अपने चप्पल या जूतों पर वे स्वयं ही पालिश करते थे। किन्तु प्रवास में कोई गरीब लड़का उनके जूते पालिश करने के लिए अड़ ही जाता तो वे उससे पालिश करवा लिया करते थे। एक बार वे मुजफ्फरपुर से मोतीहारी जा रहे थे। मोतीहारी जिले के एक सरकारी अधिकारी उनके सहयात्री थे। एक बूटपालिश करने वाला लड़का आकर उस अधिकारी से पालिश करने के लिए जूते मांग रहा था। उस अधिकारी ने लड़के से कहा—"देखो, जूते को चमकाने के लिए तुम्हारे पास कपड़ा हो, तभी मेरे जूतों को पालिश करना।" उस लड़के के पास कपड़ा नहीं था। बेचारा मन मसोस कर रह गया। दीनदयाल जी पास ही बैठे थे। उन्होंने उस लड़के से अपने जूतों को पालिश तो करवा ही लिया, किन्तु साथ ही अपने झोले से अपना पुराना-सा तौलिया निकालकर फाड़ दिया और एक टुकड़ा लड़के को देकर उससे कहा—"अब उन साहब के जूतों को पालिश कर दो।"

ऐसे थे सीधे-साधे मानव के पक्षधर सादे और सरल मानव दीनदयाल।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्री यज्ञदत्त शर्मा ने भी एक संस्मरण लिखा है जो निश्चय ही बहुत मुखर है। दिल्ली से पंडित जी और यज्ञदत्त शर्मा जी मध्यप्रदेश के किसी स्थान को जा रहे थे। दिल्ली स्टेशन पर ही उनके डिब्बे में दो भिखारिनें चढ़ गयीं और उनके पीछे-पीछे पुलिस। एक पुलिस वाले ने डण्डे चलाकर उन महिलाओं की पिटाई प्रारम्भ कर दी। पंडित जी ने उस पुलिस सिपाही का हाथ थामकर उसे रोका। उन्होंने कहा—"इन बेचारियों से क्यों मारपीट कर रहे हो? यह उचित नहीं है।" पुलिस वाले ने कहा—"ये चोरियाँ करती हैं,उससे आप जैसे यात्रियों को ही कष्ट पहुँचता है। आप चुपचाप अपने स्थान पर जाकर बैठ जाइए और मुझे मेरा काम करने दीजिए।" पंडित जी को इस पर बहुत क्रोध हो आया। उन्होंने पुलिस वाले से कहा—"ये महिलाएं अपराधी हों तो न्यायाधीश उन्हें दण्ड देगा। उनकी इस प्रकार अमानुष पिटाई करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।" पंडित जी इतना कहकर रुके नहीं। उन्होंने उस पुलिस वाले का हाथ दृढ़ता से थामे रखा। यज्ञदत्त जी लिखते हैं—"हम लोग उनके साथ इतने वर्षों से काम कर रहे थे, किन्तु उनका ऐसा रौद्रावतार पहले कभी नहीं देखा था। उत्पीड़ित साधारण मानव के लिए इस सीधे मानव को ऐसा रौद्रावतार धारण करना पड़ा था।

रमाशंकर अग्निहोत्री को सतना स्टेशन पर लगभग ऐसी ही बात अनुभव करने को मिली। पंडित जी ने देखा कि एक गरीब किसान की बाँह पकड़कर एक टिकट निरीक्षक उसे निर्दयता से झिझोड़ रहा है। टिकट बाबू उस गरीब से कुछ 'चाय-पानी' चाहता था और इसीलिए उसे त्रस्त किये जा रहा था। मई-जून की दोपहर की चिलचिलाती धूप के दिन थे। किन्तु उसकी परवाह किये बिना ही पंडित जी अपने डिब्बे से बाहर आये और उन्होंने उस टी.सी. को ललकारा। पहले तो टी.सी. ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। शायद उसने सोचा कि होगा कोई स्कूल-मास्टर। दो-एक बार चिल्लायेगा और चुप हो जायेगा। बाद में उसके ध्यान में आया कि यह धोती वाला बाबा जनसंघ का महामंत्री है और वह सीधे स्टेशन मास्टर के कार्यालय की ओर जा रहा है तो टी.सी. महाशय कुछ नरमाये और पंडित जी से क्षमा मांगने लगे और कहने लगे—"मुझे पता नहीं था आप दीनदयाल जी हैं।" इस पर तो पंडित जी और भी क्रुद्ध हुए। अन्त में उन्होंने सुझाया कि टी.सी. उस किसान से क्षमा मांगे। तदनुसार टी.सी. ने किसान से क्षमा मांगी।

'वासांसि जीर्णानि'

सच कहा जाये तो उनके प्रवास के संस्मरण ही एक बड़े ग्रंथ का विषय हो सकते हैं, किन्तु कुछ प्रसंग उनके व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को बहुत ही सटीकता से मुखरित करते हैं। एक प्रवास में उनके सहयात्री एक धनवान महानुभाव थे। एक भिखारी डिब्बे में आया और हाथ पसार कर भगवान के नाम पर भीख मांगने लगा। उस व्यक्ति ने जेब से एक सिक्का निकाला और उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भिखारी को देने ही वाला था कि पंडित जी ने उसे मना कर दिया। कुछ समय बाद एक अंधा भिखारी मीरा का भजन गाता हुआ उनके पास आया। पंडित जी ने अब अपने उस सहयात्री से कहा—"कुछ समय पहले आपने जो सिक्का देने के लिए निकाला था, वह अब इसे दे दीजिए।" उस व्यक्ति ने वैसा ही किया, किन्तु उसके कटोरे में भीख डालते-डालते पूछा—"पंडित जी, तब तो आपने भीख देने से मना कर दिया था और अब इसे भीख देने के लिए कह रहे हैं। यह भिखारी दानपात्र कैसे बना?" पंडित जी ने कहा—"वह पहला भिखारी हट्टा-कट्टा था। उसे तो परिश्रम कर कमाकर खाना चाहिए। उसका भीख मांगना हमारे देश के लिए एक कलंक है। किन्तु यह दूसरा भिखारी अपनी पंगुता पर विजय करने की चेष्टा कर रहा है और उसके लिए अपनी गायन-कला का उपयोग कर रहा है।" किसी की सहायता करते समय भी उनका दृष्टिकोण इस प्रकार विशेष होता था।

पंडित जी की सादगी से सम्बन्धित तो कितने ही संस्मरण हैं। चन्दौसी के श्री शिवकुमार अस्थाना कहते हैं—"१९६० के अगस्त मास में चन्दौसी कालेज छात्रसंघ के तत्त्वावधान में पंडित जी का सत्कार-समारोह आयोजित किया गया था। पंडित जी बाहर कहीं के दौरे से आये तो उनकी वेशभूषा कुछ विचित्र-सी थी। सादे मोटे कपड़े का कुर्ता, वह भी कहीं-कहीं फटा और थिगली लगा हुआ, जीर्णशीर्ण धोती और जूता भी ऐसा कि पाँव की छोटी अंगुली बाहर झाँक रही थी। अब ऐसे वेश में उन्हें कालेज में कैसे ले जाया जा सकता था !" नगर-कार्यवाह मनोहर लाल जी ने उन्हें नयी धोती-कुर्ता और जूते दिये तो उन्होंने कहा—"आपकी इस चन्दौसी में ही क्या अलग-सा नयापन है? मैं तो अपनी इसी वेशभूषा में सारे उत्तर प्रदेश में भ्रमण कर आया हूँ।" कपड़े बदलने के लिए उन्हें राजी करने में हमें पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। अन्त में उन्होंने कपड़े बदले और समारोह व्यवस्थित ढंग से सम्पन्न हो गया। घर वापस आने पर मनोहर लाल जी चाय का प्रबंध करने में जुट गये। तब तक पंडित जी ने सारे नये कपड़े उतारकर उनकी ठीक से तहें बनाकर रख दिये और अपने वही पुराने कपड़े पहन लिये थे। यह देखकर मनोहर लाल जी ने कहा—"पंडित जी, क्यों हमें शर्मिन्दा कर रहे हैं आप? आपने ये कपड़े उतारकर क्यों रखे?" पंडित जी ने कहा—"तो क्या इसका अर्थ है कि आपने ये नये कपड़े मुझे ही दे डाले थे?" उनके इस निरीह भोले प्रश्न से हम सब चकित रह गये। उन्हें उन नये कपड़ों को स्वीकार करवाने में भी हमें बहुत प्रयास करना पड़ा।"

श्री रामदास कलसकर का संस्मरण भी कुछ ऐसा ही है। दीनदयाल जी विदेश-यात्रा पर गये थे तो उन्हें प्रवास के अनुरूप वेशभूषा और प्रवासी-सामान दिया गया था। पंडित जी विदेश-यात्रा से लौटे तो, जानते हैं उन्होंने पहला काम क्या किया था? रामदास जी कहते हैं—"उन्होंने वह सारा सामान जनसंघ के कार्यालय-प्रमुख श्री जगदीश माथुर को सौंप दिया। सारी विदेशी मुद्राएं भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लौटा दीं। उन्होंने कहा—"मुझे इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। मेरे आवास-निवास और खानेपीने का सारा प्रबंध हमारे कार्यकर्ताओं ने ही किया था, अतः ये मुद्राएं मुझे खर्च ही नहीं करनी पड़ीं।" विदेश जाने पर कुछ वस्तुएं, कुछ कपड़े आदि खरीदकर लाना तो दूर ही रहा, उस प्रवास का 'ग्लैमर' भी उन्होंने माना नहीं, जताया भी नहीं।" अपरिग्रह महात्मा गांधी द्वारा बताये गये ग्यारह सूत्रों में से एक है। उन्हीं के अनुयायियों ने उसका कितना पालन किया है, राम ही जाने। परंतु पं.दीनदयाल जी अवश्य ही महात्मा जी द्वारा बताये गये अनेक व्रतों का पालन किया करते थे। अपरिग्रह भी उनमें से एक था।

श्री सूर्यनाथ तिवारी कहते हैं—"बात प्रतापगढ़ की है। लखनलाल चौरसिया के घर पंडित जी ठहरे थे। वे नहाने चले तो गुसलखाने की बाहर की खूँटी पर उन्होंने अपनी 'मसहरी' बनी बनियान लटका दी। लखनलाल जी ने उसे उतार लिया और उसके स्थान पर नयी बनियान वहाँ रख दी। नहाकर पंडित जी बाहर आये। उन्होंने अपनी पुरानी बनियान को खोजना प्रारंभ किया। उनसे कहा गया कि नयी बनियान ही पहन लें। तब उन्होंने बौद्धकालीन अर्थव्यवस्था का एक सूत्र बताया। बोले—"उस सूत्र में कहा गया है कि कपड़े का एक टुकड़ा भी उपयोग की विभिन्न अवस्थाएं पार करता है। पहले तो आभरण होता है, फिर गुदड़ी का अस्तर बनाया जाता है और अन्त में पाँवपोछन।" नयी बनियान उन्होंने ले तो ली, किन्तु लेते-लेते कह दिया—"गरीबों के चीथड़ों के प्रति भी हमें ऐसी ही आस्था रखनी चाहिए।"

'सन्तन चीन्हिए'

गरीबों के प्रति यह आस्था न केवल उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी, अपितु वह उनके सादे रहनसहन का तत्त्वज्ञान भी था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तर प्रदेश-प्रांतप्रचारक के नाते काम किये हुए तथा अनेक वर्ष दीनदयाल जी के सहवास में रहे हुए माननीय भाऊराव जी देवरस ने कहा है—"हमारे समाज में आज ऐसे लोगों के बीसियों उदाहरण मिलेंगे जो बोलते एक बात हैं और करते दूसरी ही। सिद्धांत भले ही कुछ भी बताते हों, किन्तु आचरण में उसका अंश भी नहीं लाते। परन्तु ऐसी विसंगति पं.दीनदयाल जी के जीवन में मिलना असंभव था। मैं संघ का प्रांतप्रचारक था, तब वे मेरे साथ सहप्रांतप्रचारक थे। किन्तु मुझे सदैव प्रतीत होता था कि वे ही मुझसे कहीं अधिक योग्य हैं। निःसन्देह वे बुद्धिमान तो थे ही, किन्तु संघकार्य की दृष्टि से वे इसलिए आदर्श कार्यकर्ता थे कि अधिकापद और प्रसिद्धि से सदा दूर ही रहते थे। सच्चे अर्थ में वे सन्त थे। अत्यंत पवित्र जीवन जीने वाले—सादगी तो ऐसी कि शब्दों में बखानी नहीं जा सकती, और प्राणिमात्र की सभी सुखसुविधाओं के परे वाले जीवन-स्तर पर विचरने वाले थे वे।" माननीय भाऊराव जी के ये शब्द पढ़कर सन्तप्रवर तुकाराम के शब्द स्मरण आते हैं—"जो दीनदुखियों को। लगाते गले। वे सन्तन चीन्हए। देव उनमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाइए।" अथवा "कथनी करनी जिनकी एक। चरणकमल वन्दों नेक।" पं.दीनदयाल जी ने इन्हीं सन्तवचनों को आधुनिक काल में सार्थक किया था। मा. भाऊराव जी ने शायद इसी दृष्टि से उन्हें 'सन्त' कहा है। वे आगे लिखते हैं—"मैं उन्हें इसलिए सन्त कहता हूँ कि सादा और कष्टमय जीवन जीने पर भी उनके व्यक्तित्व पर उसका कोई विपरीत परिणाम नहीं हुआ था। सादा और कष्टमय जीवन तो और भी अनेक लोग जीते होंगे, किन्तु इसके लिए आवश्यक मानसिकता न होने के कारण उन लोगों के व्यक्तित्व में कई बार विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जो जब-तब क्रोध करने, दूसरों को पग-पग पर उपदेश देते रहने, दूसरों की सदैव गलतियाँ ही निकालते जाने या दूसरों के अपराधों की ही लगातार बातें करते रहने जैसी हरकतों में प्रकट हुआ करती हैं। दीनदयाल जी का आदर्श जीवन, उनका बोलना-चालना तथा उनकी कृति उनके स्वभाव के ही दूसरों को उपदेश देने के लिए कभी उसका प्रदर्शन किया।

स्थितप्रज्ञता

साधुता का हमारे तत्त्वज्ञान में एक लक्षण यह बताया है कि साधु की मति सदा स्थिर होती है। वह सारे व्यवहार समत्वभाव से करता है। यह समत्वभाव व्यक्ति-व्यक्ति के साथ किये जाने वाले आचरण से संबद्ध होना चाहिए, यही सामान्यतः माना जाता है। धनी-निर्धन, छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष, या अन्य कोई भी भेद किये बिना, अपने संवर्द्धित मूल्यों के अनुसार सबके साथ एक सा आचरण रखने का ही नाम समत्व-भाव है। इसी समत्व-भाव से दीनदयाल जी प्रथम श्रेणी के राजपत्रित अधिकारी से लेकर चतुर्थ श्रेणी के सामान्य कर्मचारी तक सबके साथ कैसा व्यवहार रखते थे, इसके सैकड़ों उदाहरण हैं। कुछ चुनिन्दा उदाहरण हम पहले बता चुके हैं, और भी अनेक दिये जा सकते हैं। किन्तु समत्व-भाव का अर्थ है अपने जीवन में सुखदुख, हर्षामर्ष आदि के जो नाना प्रसंग आते हैं उनको पार करते समय चित्त की अविचलता। गीता में इसे स्थितप्रज्ञता कहा गया है। शीतोष्ण, सुखदुख, लाभालाभ, जय-पराजय, जो भी मिले, उसकी ओर समत्व-भाव से देखने की यह प्रवृति होती है। श्री भाऊराव देवरस ने दीनदयाल जी को 'सन्त' शायद उनकी इसी समत्व-प्रवृत्ति के कारण ही कहा है।

भाऊराव जी ने एक संस्मरण बताया है। १९५२ से १९६७ के अन्त तक के पंद्रह वर्ष में जनसंघ जैसे अखिल भारतीय दल के महामंत्री होते हुए भी दीनदयाल जी केवल एक ही बार १९६७ में लोकसभा के चुनाव में खड़े हुए थे। जौनपुर उनका निर्वाचन-क्षेत्र था। वे इस चुनाव में खड़े हों, इसके लिए उन पर कितना दबाव डालना पड़ा था, उसके बारे में भाऊराव लिखते हैं—"हमारे तीस वर्ष के साहचर्य में उनके मन के विरुद्ध मैंने केवल एक ही बात की और वह थी उन्हें जौनपुर से लोकसभा के लिए चुनाव लड़ने को विवश करना। १९६२ के चुनाव में वाजपेयी के हारने के कारण जनसंघ की दृष्टि से लोकसभा में एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार की रिक्तता उत्पन्न हो गयी थी। उसे भरने के लिए सब की सम्मति थी कि पंडित जी चुनाव लड़ें। किन्तु पंडित जी इसके लिए अपनी सहमति नहीं दे रहे थे। उनका कहना था—"मैं संघ का प्रचारक हूँ। चुनाव लड़ना मेरे लिए उचित नहीं होगा। प्रचारक भी चुनाव लड़ते हैं, ऐसी गलत परिपाटी इससे पड़ जायेगी और भविष्य में संगठन पर इसका विपरीत परिणाम होगा।" हम सभी सहयोगियों ने एकमत से उन्हें चुनाव लड़ने के लिए कहा, तब कहीं वे माने। चुनाव में वे हार गये। उसके दूसरे ही दिन वे काशी में संघ के वर्ग में पहुँच गये। वहाँ उनका आचरण देखकर हम सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये कि इतने बड़े चुनाव में हारने वाले क्या ये ही दीनदयाल जी हैं? उनका अत्यंत शांत और सहज आचरण देखकर मैं स्वयं दंग रह गया था।"

चुनाव में भूमिका

मा.भाऊराव जी ने कहा है—"जौनपुर का यह चुनाव दीनदयाल जी ने अपने आदर्शों के अनुसार ही लड़ा था।" क्या थे वे आदर्श? चुनावों की ओर देखने की उनकी दृष्टि क्या थी? इस संबंध में श्री माणिकराम चौधरी ने लिखा है—"चुनाव का परिणाम आने वाले दिन, रात में हम लोग जौनपुर-महाराजा के निवासस्थान में बैठे थे। नानाजी देशमुख थे, पंडित जी भी थे। इस चुनाव में हमने अपना वास्तव में सब कुछ लगा दिया था। अत: इतने परिश्रम के बाद भी जीत न पाने के कारण वातावरण में एक प्रकार की निराशा छायी थी। केवल पंडित जी ही निराश नहीं थे। उन्होंने हम कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए कहा—"यह सच है कि इस चुनाव में हमारा दल घर-घर में पहुँचा है"।"अर्थात् उनका चुनाव की ओर देखने का दृष्टिकोण लोकशिक्षात्मक था। चुनाव के बहाने लोगों के पास जाना और उन्हें अपने दल की नीतियाँ समझाना ही उनकी दृष्टि में अधिक महत्त्वपूर्ण था। हार-जीत का स्थान गौण था।

कुछ इसी प्रकार का एक संस्मरण श्री रघुनाथ पोद्दार ने लिखा है। बिहार में ईसाई मिशनरियों के कारनामे प्रबलता पर थे। श्री पोद्दार उसी क्षेत्र में काम कर रहे थे। पंडित जी के दौरे में उन्होंने इन कारनामों का पूरा विवरण उनको दिया। विधानसभा-चुनावों में इन कारनामों को उजागर करने की चर्चा भी हुई। फिर प्रश्न उपस्थित हुआ कि कितने स्थानों पर चुनाव लड़ा जाय? पोद्दार जी का कहना था कि ग्यारह स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किये जा सकते हैं। किसी ने चौदह स्थानों को गिनाया। किन्तु पंडित जी ने कहा—"पूरे सत्रह के सत्रह स्थानों पर लड़ना चाहिए।" उनकी बात में आत्मविश्वास था। बोले—"सब स्थानों पर लड़ेंगे नहीं, तो धर्मान्तरण के संकट का सामना हम कैसे कर पायेंगे?" उनके परामर्श पर हमने पूरे सत्रह स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किये और पाँच स्थानों पर विजयी भी रहे। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ये पाँचों स्थान उस क्षेत्र में पड़ते थे जहाँ धर्मपरिवर्तन कराने वाले मिशनरियों का संकट अधिक प्रखर था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाइए।" अथवा "कथनी करनी जिनकी एक। चरणकमल वन्दों नेक।" पं.दीनदयाल जी ने इन्हीं सन्तवचनों को आधुनिक काल में सार्थक किया था। मा. भाऊराव जी ने शायद इसी दृष्टि से उन्हें 'सन्त' कहा है। वे आगे लिखते हैं—"मैं उन्हें इसलिए सन्त कहता हूँ कि सादा और कष्टमय जीवन जीने पर भी उनके व्यक्तित्व पर उसका कोई विपरीत परिणाम नहीं हुआ था। सादा और कष्टमय जीवन तो और भी अनेक लोग जीते होंगे, किन्तु इसके लिए आवश्यक मानसिकता न होने के कारण उन लोगों के व्यक्तित्व में कई बार विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जो जब-तब क्रोध करने, दूसरों को पग-पग पर उपदेश देते रहने, दूसरों की सदैव गलतियाँ ही निकालते जाने या दूसरों के अपराधों की ही लगातार बातें करते रहने जैसी हरकतों में प्रकट हुआ करती हैं। दीनदयाल जी का आदर्श जीवन, उनका बोलना-चालना तथा उनकी कृति उनके स्वभाव के ही दूसरों को उपदेश देने के लिए कभी उसका प्रदर्शन किया।

स्थितप्रज्ञता

साधुता का हमारे तत्त्वज्ञान में एक लक्षण यह बताया है कि साधु की मति सदा स्थिर होती है। वह सारे व्यवहार समत्वभाव से करता है। यह समत्वभाव व्यक्ति-व्यक्ति के साथ किये जाने वाले आचरण से संबद्ध होना चाहिए, यही सामान्यतः माना जाता है। धनी-निर्धन, छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष, या अन्य कोई भी भेद किये बिना, अपने संवर्द्धित मूल्यों के अनुसार सबके साथ एक सा आचरण रखने का ही नाम समत्व-भाव है। इसी समत्व-भाव से दीनदयाल जी प्रथम श्रेणी के राजपत्रित अधिकारी से लेकर चुतर्थ श्रेणी के सामान्य कर्मचारी तक सबके साथ कैसा व्यवहार रखते थे, इसके सैकड़ों उदाहरण हैं। कुछ चुनिन्दा उदाहरण हम पहले बता चुके हैं, और भी अनेक दिये जा सकते हैं। किन्तु समत्व-भाव-का अर्थ है अपने जीवन में सुखदुख, हर्षामर्ष आदि के जो नाना प्रसंग आते हैं उनको पार करते समय चित्त की अविचलता। गीता में इसे स्थितप्रज्ञता कहा गया है। शीतोष्ण, सुखदुख, लाभालाभ, जय-पराजय, जो भी मिले, उसकी ओर समत्व-भाव से देखने की यह प्रवृति होती है। श्री भाऊराव देवरस ने दीनदयाल जी को 'सन्त' शायद उनकी इसी समत्व-प्रवृत्ति के कारण ही कहा है।

भाऊराव जी ने एक संस्मरण बताया है। १९५२ से १९६७ के अन्त तक के पंद्रह वर्ष में जनसंघ जैसे अखिल भारतीय दल के महामंत्री होते हुए भी दीनदयाल जी केवल एक ही बार १९६७ में लोकसभा के चुनाव में खड़े हुए थे। जौनपुर उनका निर्वाचन-क्षेत्र था। वे इस चुनाव में खड़े हों, इसके लिए उन पर कितना दबाव डालना पड़ा था, उसके बारे में भाऊराव लिखते हैं—"हमारे तीस वर्ष के साहचर्य में उनके मन के विरुद्ध मैंने केवल एक ही बात की और वह थी उन्हें जौनपुर से लोकसभा के लिए चुनाव लड़ने को विवश करना। १९६२ के चुनाव में वाजपेयी के हारने के कारण जनसंघ की दृष्टि से लोकसभा में एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार की रिक्तता उत्पन्न हो गयी थी। उसे भरने के लिए सब की सम्मति थी कि पंडित जी चुनाव लड़ें। किन्तु पंडित जी इसके लिए अपनी सहमति नहीं दे रहे थे। उनका कहना था—"मैं संघ का प्रचारक हूँ। चुनाव लड़ना मेरे लिए उचित नहीं होगा। प्रचारक भी चुनाव लड़ते हैं, ऐसी गलत परिपाटी इससे पड़ जायेगी और भविष्य में संगठन पर इसका विपरीत परिणाम होगा।" हम सभी सहयोगियों ने एकमत से उन्हें चुनाव लड़ने के लिए कहा, तब कहीं वे माने। चुनाव में वे हार गये। उसके दूसरे ही दिन वे काशी में संघ के वर्ग में पहुँच गये। वहाँ उनका आचरण देखकर हम सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये कि इतने बड़े चुनाव में हारने वाले क्या ये ही दीनदयाल जी हैं? उनका अत्यंत शांत और सहज आचरण देखकर मैं स्वयं दंग रह गया था।"

चुनाव में भूमिका

मा.भाऊराव जी ने कहा है—"जौनपुर का यह चुनाव दीनदयाल जी ने अपने आदर्शों के अनुसार ही लड़ा था।" क्या थे वे आदर्श? चुनावों की ओर देखने की उनकी दृष्टि क्या थी? इस संबंध में श्री माणिकराम चौधरी ने लिखा है—"चुनाव का परिणाम आने वाले दिन, रात में हम लोग जौनपुर-महाराजा के निवासस्थान में बैठे थे। नानाजी देशमुख थे, पंडित जी भी थे। इस चुनाव में हमने अपना वास्तव में सब कुछ लगा दिया था। अतः इतने परिश्रम के बाद भी जीत न पाने के कारण वातावरण में एक प्रकार की निराशा छायी थी। केवल पंडित जी ही निराश नहीं थे। उन्होंने हम कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए कहा—"यह सच है कि इस चुनाव में हमारा दल घर-घर में पहुँचा है"।"अर्थात् उनका चुनाव की ओर देखने का दृष्टिकोण लोकशिक्षात्मक था। चुनाव के बहाने लोगों के पास जाना और उन्हें अपने दल की नीतियाँ समझाना ही उनकी दृष्टि में अधिक महत्त्वपूर्ण था। हार-जीत का स्थान गौण था।

कुछ इसी प्रकार का एक संस्मरण श्री रघुनाथ पोद्दार ने लिखा है। बिहार में ईसाई मिशनरियों के कारनामे प्रबलता पर थे। श्री पोद्दार उसी क्षेत्र में काम कर रहे थे। पंडित जी के दौरे में उन्होंने इन कारनामों का पूरा विवरण उनको दिया। विधानसभा-चुनावों में इन कारनामों को उजागर करने की चर्चा भी हुई। फिर प्रश्न उपस्थित हुआ कि कितने स्थानों पर चुनाव लड़ा जाय? पोद्दार जी का कहना था कि ग्यारह स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किये जा सकते हैं। किसी ने चौदह स्थानों को गिनाया। किन्तु पंडित जी ने कहा—"पूरे सत्रह के सत्रह स्थानों पर लड़ना चाहिए।" उनकी बात में आत्मविश्वास था। बोले—"सब स्थानों पर लड़ेंगे नहीं, तो धर्मान्तरण के संकट का सामना हम कैसे कर पायेंगे?" उनके परामर्श पर हमने पूरे सत्रह स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किये और पाँच स्थानों पर विजयी भी रहे। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ये पाँचों स्थान उस क्षेत्र में पड़ते थे जहाँ धर्मपरिवर्तन कराने वाले मिशनरियों का संकट अधिक प्रखर था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सारे स्थान वनवासी क्षेत्र में आते थे। 'संकट की अचूक टोह कर उसपर सीधा आक्रमण करने के लिए चुनाव का उपयोग कर लेना चाहिए', यह दीनदयाल जी का विचार उसके बाद हमें सदैव प्रेरणा देता रहा।"

भावनगर के श्री सुमनभाई पारेख ने भी पंडित जी का चुनाव संबंधी दृष्टिकोण बताया है। आप लिखते हैं—"प्रत्येक राजनीतिक दल को चुनाव अवश्य लड़ने चाहिए, यह बात समझाते समय पंडित जी कहा करते थे—"हर परीक्षा में एक प्रश्न अनिवार्य हुआ करता है। शेष प्रश्नों के लिए विकल्प दिये होते हैं। राजनीतिक दलों की बात भी कुछ ऐसी ही है। उनकी परीक्षा में चुनाव एक अनिवार्य (कम्पलसरी) प्रश्न होता है।" पंडित जी इसका जो कारण बताते थे, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं मार्मिक होता था। वे कहा करते थे—"चुनाव के समय लोग बात समझ लेने की मानसिकता में होते हैं। विभिन्न दलों के विचार सुनने तथा उनको तुलनात्मक दृष्टि से परखने का अवसर लोगों को मिलता है। हमें इसका लाभ अवश्य लेना चाहिए। चुनाव के बहाने दल के संसाधनों को भली भांति जुटाया जाता है। कार्यकर्ताओं की संख्या भी बढ़ायी जा सकती है। चुनाव में हार भी जायें, तब भी दल का संगठन आगे बढ़ता ही है।" जौनपुर-चुनाव में हारने के बाद उनका वाक्य स्मरण है न? 'हमारा प्रत्याशी अवश्य हारा है, किन्तु दल जीत गया है'।"

सिद्धान्त की बलि चढ़ाकर विजय नहीं चाहिए!

उनका केवल आग्रह नहीं, अपितु अतिआग्रह रहता था कि चुनाव-प्रचार में भी आचार-संहिता का पालन बराबर करना चाहिए। दीनदयाल जी के अनेक वर्ष तक सहयोगी एवं प्रसिद्ध पत्रकार श्री यादवराव देशमुख ने इस सिलसिले में उनके दो संस्मरण बताये हैं। जौनपुर लोकसभा-चुनाव के समय यादवराव पंडित जी के साथ प्रवास कर रहे थे। पंडित जी के भाषण चुनावी ढंग के नहीं होते थे। यादवराव और उनके अन्य सहयोगियों ने सुझाव दिया—"पंडित जी, चुनाव-सभाओं में भाषण कुछ अधिक आक्रामक होने चाहिए। प्रतिपक्ष पर तीखा प्रहार किये बिना चुनाव-अभियान में रंग नहीं चढ़ पायेगा। मतदाताओं पर शिक्षात्मक एवं रचनात्मक भाषणों का प्रभाव नहीं पड़ता।" इस पर दीनदयाल जी ने कहा—"देखिए, मेरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, ऐसा लगता हो, तो मैं चुनाव से हट जाता हूँ। किन्तु केवल मतों के लिए मैं अपने भाषणों में अनावश्यक तीखापन नहीं ला सकूंगा। विरोधियों की व्यक्तिगत आलोचना करना तो मैं अनैतिक ही मानता हूँ।"

यादवराव जी इसी चुनाव का एक और प्रसंग बताते हैं—" जौनपुर चुनाव-क्षेत्र का स्वरूप (कम्प्लेक्शन) कुछ विचित्र था। राजपूतों की पर्याप्त संख्या और ब्राह्मणों का वर्चस्व भी कुछ कम नहीं था। दीनदयाल जी का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रतिस्पर्द्धी राजपूत था। उसने जातिवाद का सहारा लिया था। उसका प्रचार भी उसी दिशा में चल रहा था। जनसंघ के कार्यकर्ता व्यग्र हो गये। उन्हें लगा कि अब बस जीतने की स्थिति आते-आते अपने हाथों से शायद निकली जा रही है। उन्होंने अपनी मति के अनुसार इसका उपाय सोचा और कहा—'कांग्रेस ठाकुरवाद चला रही है तो हम ब्राह्मणवाद चला दें। क्या हानि है? चुनाव-युद्ध में सब कुछ क्षम्य ही होता है न?' किन्तु उनकी बात पंडित जी को रास नहीं आयी। इस पर कार्यकर्ता तुनक कर बोले—"आप चाहे तो जातिवाद के नाम पर वोट न मांगिए, किन्तु हमें तो ऐसा करने से न रोकिए। अन्यथा आपका यह आदर्शवाद हमें इस चुनाव में ले डूबे बिना नहीं रहेगा।" इस पर पंडित जी का मुख तमतमा उठा। उन्हें कभी क्रोध में आया किसी ने शायद ही देखा होगा, किन्तु उस दिन वे वास्तव में लाल-पीले हो गये और बोले—"सिद्धान्त की बलि चढ़ाकर जातिवाद के सहारे मिलने वाली विजय, सच पूछो तो, पराजय से भी बुरी है। ऐसी विजय हमें नहीं चाहिए।" उनका क्रोध और बात कहने में व्यक्त दृढ़ संकल्प देखकर वातावरण एकदम गंभीर हो गया। किन्तु पल भर के बाद ही पंडित जी शांत हो गये। उनका सदा का स्मित हास्य उनके मुख पर फिर लौट आया। बड़े चाव से बहस कर रहे अपने एक सहयोगी के कन्धे पर प्रेम से हाथ रखकर बोले—"भाई, राजनीतिक दल के जीवन में एक उपचुनाव कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। किन्तु एक चुनाव में जीतने के लिए हमने जातिवाद का सहारा लिया, तो वह भूत सदा के लिए हम पर सवार हो जायेगा और फिर कांग्रेस और जनसंघ में कोई अन्तर नहीं रहेगा !"

इस चुनाव के बाद आमंत्रित संवाददाता-सम्मेलन में भी दीनदयाल जी के स्वभाव की विशेषताओं की छाप अंकित हो गयी। उस समय तीन महत्त्वपूर्ण उपचुनाव हुए थे। एक में डा.लोहिया चुनकर आये थे तो दूसरे में आचार्य कृपलानी। किन्तु तीसरे में दीनदयाल जी हार गये थे। संवाददाताओं ने प्रश्न किया—"देश में जब कांग्रेस-विरोधी वातावरण है, तो आप चुनाव कैसे हार गये?" ऐसे प्रश्न पर पराजय का कारण बताने के लिए वस्तुतः क्या यह नहीं कहा जा सकता था कि सत्ताधारी दल ने सत्ता और धन का खुलकर उपयोग किया? अवश्य ही ऐसा कहा जा सकता था। वास्तविकता भी वैसी ही थी। किन्तु दीनदयाल जी ने कहा—"स्पष्ट बात बताऊँ? मेरे विरुद्ध खड़ा कांग्रेस का प्रत्याक्षी एक सच्चा कार्यकर्ता है। उसने उस भाग में पर्याप्त काम किया है। अतः स्वाभाविकतः लोगों ने उसे अधिक मत दिये।" पराजय में भी उनकी उदारमनस्कता रत्ती भर भी घटी नहीं थी।

ये तो रहे सब चुनाव संबंधी संस्मरण। किन्तु एक अंतिम संस्मरण उनके विचारों के खरेपन को दर्शाने वाला है। चुनाव में अनुमान तो लगाये ही जाते हैं। समाचारपत्र, कार्यकर्ता, नेता, सभी तो अपने-अपने ढंग से अनुमान लगाया ही करते हैं। कभी-कभी तो ज्योतिषियों की भी सहायता ली जाती है। बात १९६७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के चुनाव के समय की है। वातावरण विरोधियों के लिए अनुकूल था। जगदीशप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"हम लोग आपस में बातचीत करते बैठे थे। किसी ने कहा 'हम लोग जनसंघ की कुण्डली (जन्मपत्री) बनायेंगे।' किन्तु कौन बनायेगा? क्योंकि जन्मपत्री बनाने के लिए तो सही जन्म-समय ज्ञात होना चाहिए। सिवा दीनदयाल जी के ठीक जन्मसमय कौन बता सकता था? भोपाल में पंडित जी से यह बात छेड़ी गयी। पंडित जी ने दृढ़ता से कहा—"देखिए, हम लोग कर्मवीर हैं। प्रयत्नवाद पर हमारा भरोसा है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र का भरोसा करने का अर्थ तो निष्क्रिय बनना है।"

'अष्टावधानी प्रतिभा'

पं. दीनदयाल उपाध्याय के इस प्रकार के संस्मरणों का तो कोई अन्त ही नहीं है। उनकी साधुता, समत्वबुद्धि तथा संगठन-कुशलता का परिचय इनसे मिलता है। किन्तु पंडित जी के व्यक्तित्व की बौद्धिक श्रेष्ठता को ध्यान में लिये बिना उनका दर्शन पूरा नहीं होगा। इससे पहले हम वह संस्मरण तो बता ही चुके हैं जिसमें उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में अर्जित प्रमाणपत्रों को जलाने को कह दिया था और उनके जलाये जाने के बाद अपने आपको बोझ से मुक्त अनुभव किया था। किन्तु इस प्रकार शैक्षिक योग्यता के प्रमाणपत्रों को जला डालने तथा स्वर्ण-पदकों को गला डालने मात्र से वह मेधा, प्रज्ञा एवं प्रतिभा कहाँ छिपी रह सकती है? वे तो उनके मूलगामी चिंतन से बार-बार व्यक्त हो ही जाती थीं। उस बारे में भी कुछ बताना होगा।

१९३९-४० की बात है। दीनदयाल जी नागपुर में संघ-शिक्षा-वर्ग के लिए गये थे। वे स्वयं वर्ग में तृतीय वर्ष की शिक्षा ले रहे थे। सारे देश से उस वर्ग के लिए स्वयंसेवक आये थे। उन दिनों इन वर्गों में परीक्षाएं ली जाती थीं। बौद्धिक परीक्षा ली गयी। उसमें पंडित जी प्रथम क्रमांक पर आये थे। उनका प्रथम स्थान पर आना उनको जन्म से ही प्राप्त कुशाग्र मेधा का परिणाम तो था ही, किन्तु उसमें उनकी अध्ययनशीलता और चिंतन का अंश भी पर्याप्त बड़ा था। उनकी इस अध्ययनशीलता के बारे में वर्तमान सरकार्यवाह और पं. दीनदयाल जी के के उत्तर प्रदेश में सहयोगी, प्रा. राजेन्द्रसिंह जी लिखते हैं—"वे प्रकाण्ड पाठक थे। कार्य की अत्यधिक व्यस्तता में भी नयी-नयी पुस्तकें वे पढ़ा करते थे। पढ़ने के लिए पर्याप्त समय मिले, इस हेतु वे यात्री (पैसेंजर) गाड़ी में यात्रा किया करते थे। अपने अनेक लेख एवं पत्र उन्होंने प्रवास में ही लिखे हैं। वे अर्थशास्त्र के छात्र नहीं थे, किन्तु एक बार यह निश्चय होने के बाद कि अर्थशास्त्र का अध्ययन करना है, उन्होंने उसका गहन अध्ययन किया। जानते हैं, कैसा? एक बार पंडितजी ने कहा—"मैं नियोजन विषय पर एक ग्रंथ लिखना चाहता हूँ।" मैंने उन्हें स्मरण कराया—"आप पंचवर्षीय योजनाओं पर लिखना तो चाहते हैं, किन्तु अर्थशास्त्र तो आपका विषय कभी नहीं रहा!" पंडित जी ने इस पर कहा—"आप ठीक कहते हैं। किन्तु विगत दो वर्षों में मैंने अर्थशास्त्र और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नियोजन पर लिखी कम से कम पाँच सौ पुस्तकें पढ़ ली हैं।" यही कारण था कि उनके व्यक्तित्व के इस पहलू की भी छाप सर्वत्र पड़ती थी।"

अमरीका-यात्रा से लौटते समय वे इंग्लैण्ड में कुछ दिन के लिए रुके थे। वहाँ कुछ पत्रकारों के साथ उनकी बातचीत का कार्यक्रम रखा गया था। इस चर्चा का उल्लेख 'मैंचेस्टर गार्जियन' के प्रतिनिधि ने अपने स्तंभ में किया था। उसने उस चर्चा का विवरण बहुत ही गौरवपूर्ण उल्लेख के साथ प्रकाशित किया था और अन्त में अपना मत देते हुए लिखा था–"मिस्टर उपाध्याय इज ए मैन टु वाच। (श्री उपाध्याय ध्यानपूर्वक देखे जाने योग्य व्यक्ति हैं।)

भारत में एक विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों के साथ एक चर्चा-सत्र में उन्हें भी आमन्त्रित किया गया था। डा.अरविंद लेले इस चर्चा-सत्र का एक संस्मरण बताते हैं–"उस दिन चर्चा में पंडित जी ने विदेशों में प्रकाशित नये ग्रंथों के सन्दर्भ दिये। उनमें से कुछ पुस्तकें या तो उस विश्वविद्यालय में अभी पहुँची नहीं थीं या उन प्राध्यापकों ने शायद पढ़ी नहीं थीं। इस चर्चा में पंडित जी के योगदान से अभिभूत एक प्राध्यापक ने धन्यवाद देते हुए कहा था–" द ओनली सिम्पल थिंग अबाउट दिस मैन इज हिज ड्रेस , अदरवाइज ही इज मास्टर ऑफ मास्टर्स! (इनके बारे में एक ही बात साधारण है– इनके वस्त्र; अन्यथा ये आचार्यों के आचार्य हैं।)"

उनकी इस मेधा और अध्ययनशीलता का दर्शन उनसे चर्चा करने वाला कोई भी कर सकता था, चर्चा का विषय कुछ भी क्यों न रहा हो– वयस्क मताधिकार-प्रणाली, स्वदेशी, या भाषिक राज्यरचना। स्व. बाबा साहब आपटे जी से हुई यह चर्चा ही देखिए! बाबासाहब आपटे ने पंडित जी से कहा–"क्यों पंडित जी, क्या आपको नहीं लगता कि हम भी अंग्रेजों की भांति पहले शिक्षा और सम्पत्ति का विचार कर मताधिकार की प्रणाली अपनाते तो अधिक अच्छा होता?" पंडित जी ने विरोध दर्शाया। उन्होंने कहा–"हमारे देश में सुशिक्षितों का सुस्थापित वर्ग भारतीय परंपरा से बिछड़ा हुआ है। मनुष्य जितना पढ़ा-लिखा हो, उतना ही वह भारतीय परंपरा एवं संस्कृति से अधिक दूर होगा–यह मानो आज का समीकरण सा बन गया है। इसके अतिरिक्त वह बड़ी मात्रा में बहुसंख्य समाज का शोषणकर्ता भी बन बैठा है। अत: इस अल्पसंख्या वाले सुशिक्षित वर्ग की अपेक्षा बहुसंख्या में रहने वाला समाज ही हमारे देश और संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि है। स्वतन्त्रता का फल उन लोगों तक पहुँचाते हुए उनके जीवनस्तर को ऊँचा उठाना हमारा कर्तव्य होना चाहिए, क्योंकि वयस्क मताधिकार प्रणाली की यही आधार-शिला है और वह सर्वथा उचित ही है।"

स्व. बाबासाहब आपटे लिखते हैं–"शिक्षा या सम्पत्ति के आधार पर मताधिकार की पात्रता निर्धारित करना उन्हें अन्यायकारी लगता था। उनका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहना था—"पानी में उतरे बिना तैरना नहीं आ सकता।" मैंने इस पर उनसे कहा था—"गहरे पानी में उतरे बिना तैरना नहीं आ सकता, यह पूर्ण सत्य नहीं है। तैरना न जानने वाला व्यक्ति गहरे पानी में पैठ क्यों लगायेगा? उसके लिए तो मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। हवाभरी रबर की नली तो कम से कम बांधनी ही पड़ती है।" इस पर पंडित जी ने कहा—"मतदाताओं का मार्गदर्शन करने वाली दो शक्तियाँ लोकतंत्र में होती हैं—एक तो राजनीतिक दल और दूसरे, समाचारपत्र।" मैंने कहा—"यह काम ठीक से और पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाता, यही तो व्यथा है। आज तक हुए चुनावों के परिणामों को देखते हुए क्या आप सचमुच सोचते हैं कि कोई आशा की जा सकती है? कांग्रेस बहुत ही कम स्थानों में हारी है और जहाँ हारी भी है, राष्ट्रवादी दलों के हाथों नहीं हारी है।" इसका पंडित जी द्वारा दिया गया उत्तर संक्षेप में यह है—'हमारा समाज सदियों तक दासता में रहा है। आज नहीं तो कल, वह अवश्य ही लोकतन्त्र के मूल्यों को समझते हुए मतदान करने लगेगा। इसमें कुछ समय तो लगेगा ही।' मैंने उनसे पूछा—"कितना समय?" दीनदयाल जी ने उत्तर दिया—"दस वर्ष पर्याप्त हैं। आपके रहते आप इस परिवर्तन को देख सकेंगे।"

यह संवाद १९६५ में हुआ था। क्या कहा जा सकता है कि पंडित जी का यह प्रतिपादन १९७७ में देश ने अनुभव किया?

मुसलमानों की चिन्ता छोड़ें

एक स्थान पर बातों-बातों में उर्दू भाषा का प्रश्न उपस्थित किया गया। गोपाल जी केसरी ने इस प्रसंग का संस्मरण लिखा है। भाषाविषयक चर्चा में गोपाल जी ने पूछा—"जनसंघ उर्दू का विरोध क्यों करता है?" दीनदयाल जी ने कहा—"गोपाल जी, भाषा के नाते हमारा किसी भी भाषा से विरोध नहीं है। किन्तु उर्दू को यदि भारतीय भाषा के रूप में मान्यता चाहिए हो, तो उसे पहले भारतीय बनना पड़ेगा। उर्दू का मूल विदेश में है। भारत में रहने वाले ईसाई यदि कल को यह मांग करने लगें कि अंग्रेजी को भारतीय भाषा के रूप में मान्यता दी जाये, तो क्या हम उनका आग्रह स्वीकार कर लेंगे? अलग भाषा तथा अलग संस्कृति को स्वीकार करने के कारण हमने देश के विभाजन को एक बार अनुभव किया है। अब तो हम देश का विभाजन कर सकने वाले किसी भी अलगाव के किसी भी आग्रह को स्वीकार नहीं कर सकेंगे।"

स्वयं दीनदयाल जी को उर्दू शेरोशायरी बहुत प्रिय थी। इसके उपरान्त उन्होंने इस भाषा के बारे में इतना सुस्पष्ट विचार रखा था। उर्दू शायरी में उनकी अभिरुचि कभी छिपी नहीं रहती थी। जनसंघ के वरिष्ठ नेता श्री पीतांबरदास और पं. दीनदयाल जी की भेंट हो और शेरोशायरी न हो जाये, ऐसा कभी होता ही नहीं था। स्वयं पीतांबरदास जी ने लिखा है—"उनसे भेंट दीवान-खाने में हो अथवा रेलवे स्टेशन पर बिदाई के समय हो, पंडित जी शेर सुनाने का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुरोध अवश्य करते। पीतांबर जी शेर सुनाते और दीनदयाल जी वाहवाह की 'दाद' देकर विदा हो जाते थे। किन्तु व्यक्तिगत रुचि - अरुचि और राष्ट्रहित में उन्होंने कभी कोई संभ्रम होने नहीं दिया।

उर्दू का विषय आया है तो शंकरप्रसाद जायवाल और पंडित जी ने बीच हुआ संभाषण स्मरण आता है। जायसवाल जी ने उनसे पूछा—"सदैव यह आक्षेप किया जाता है कि जनसंघ में मुसलमान नहीं आते।पंडित जी,हम मुसलमानों को कैसे आकृष्ट कर पायेंगे?" पंडित जी ने तुरंत उत्तर दिया—"सामान्यतः देखा गया है कि मुसलमान समाज सत्ताधारी पक्ष को समर्थन देता है। कल हम सत्ता में आते हैं, तो वे हमारे साथ हो लेंगे। अतः अभी उनकी चिन्ता आप छोड़ दें।" क्या पंडित जी ने इस उत्तर द्वारा भारत के विगत ६००—७०० वर्ष के इतिहास का ही सार नहीं बतलाया है?

सव्यसाची प्रतिभा

पंडित जी ने इस प्रकार तो कितने ही विषयों पर विचार-दर्शन कराया है, किन्तु उनकी बुद्धिमत्ता के वैभव के बारे में श्री लक्ष्मणराव भिड़े द्वारा बताया गया संस्मरण बहुत महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है—"नागपुर की एक बैठक में किसी विषय पर चर्चा चल रही थी। चर्चा में मतभेद तो होते ही हैं। उन दिनों के सरकार्यवाह श्री भैयाजी दाणी और पंडित जी में मतभेद हो गया। पंडित जी ने एक के बाद एक अनेक तथ्य और तर्क उपस्थित कर प्रतिपक्ष के मतों का खण्डन किया। बैठक में उपस्थित कार्यकर्ता अवाक् रह गये। पंडित जी के वाक्चातुर्य एवं मंडनशैली पर सभी प्रसन्न थे। सच बात यह थी कि स्वयं भैयाजी दाणी भी बहुत ही प्रसन्न थे। सबके सामने उन्होंने पंडित जी से कहा—"पंडित जी, यह तो हुआ विषय का एक पक्ष। अब दूसरा पक्ष भी आप ही प्रस्तुत करें।" भैया जी के इस चातुर्य से सभी चकित रह गये। सभी साश्चर्य देखने लगे कि अब आगे क्या होता है। बैठक में श्री गुरुजी भी उपस्थित थे। वे भी कुतूहलपूर्ण आश्चर्य से देखने लगे। पंडित जी ने यह चुनौती भी स्वीकार की। सदा की भांति उन्होंने 'खैर,' कहा और कुछ क्षणों पूर्व प्रस्तुत अपने ही पक्ष का उन्होंने उतने ही प्रभावशाली ढंग से खंडन कर दिया। ऐसी थी उनकी सव्यसाची प्रतिभा!"

अब तक के संस्मरणों द्वारा हमने दीनदयाल उपाध्याय जी के व्यक्तित्व के विविध पहलुओं को देखा है। उनकी सादगी, अपने आचरण के माध्यम से संस्कार प्रदान करने की सहज स्वाभाविक शैली, रा.स्व.संघ के मूल कुल और कुलधर्म का निष्ठापूर्वक पालन आदि उनकी विशेषताओं को भी हमने देखा। उन्होंने जनसंघ का नेतृत्व करते हुए उस दल को बढ़ाया, किन्तु इसकी अखण्ड चिन्ता की कि उस दल के पैर मूल ध्येयमार्ग से इधर-उधर बहक न जायें। इसके लिए उन्हें कभी-कभी कठोर भी बनना पड़ता था। ध्येयनिष्ठा पर चलने के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्तव्यकठोर बनना ही पड़ता है। इस प्रकार कठोरता दिखाने का प्रसंग उनके समक्ष एक बार राजस्थान में आया था।

दल की छवि के लिए

१६० सदस्यों वाली राजस्थान विधान-सभा में प्रथम महानिर्वाचन के बाद विपक्ष के ७७ विधायकों ने एकत्रित होकर एक संयुक्त विधायक दल बनाया था। इनमें जनसंघ के आठ विधायक थे। इसी गुट के कारण जनसंघ के श्री लालसिंह विधानसभा के उपसभापति बनाये गये थे।

इस 'संविद' ने भूमि-सुधारों का विरोध करने की ठानी, क्योंकि 'संविद' के बहुसंख्य सदस्य जमींदार-जागीरदार थे। 'संविद' की इस भूमिका के कारण यह संकट स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि जनसंघ की छवि भी जमींदार-जागीरदारों के दल की बन जायेगी। एक ओर महाप्रयास से विधानसभा में जीते गये आठ स्थान थे और दूसरी और दल की छवि और सिद्धांत का प्रश्न था। ऐसे समय पंडित जी ने क्या निर्णय किया होगा? उन्होंने यह कहकर कि "प्रगतिशील जनसंघ का प्रतिक्रियावादी विपक्षी गुट के साथ रहना असंभव है," आठों विधायकों को 'संविद' को त्याग देने का आदेश दिया। आठ में से तीन ने उनके आदेश का पालन किया। शेष पाँच ने दल का आदेश मानने से इन्कार किया तो दल के महामन्त्री के नाते पंडित जी ने उन्हें जनसंघ से निष्कासित कर दिया। जनसंघ की लोकाभिमुख प्रतिमा को संजोये रखने का दायित्व दींनदयाल जी पर था। इसके लिए इस प्रकार का कठोर निर्णय करना आवश्यक ही था और उतनी कर्तव्य-कठोरता उनमें अवश्य थी।

तात्पर्य यह कि ध्येयनिष्ठा एवं साधुता के साथ ही, जहाँ आवश्यक हो वहाँ कठोरता बरतने का सामर्थ्य भी उनमें था। एक अखिल भारतीय दल का उसकी स्थापना के समय से संवर्द्धन करने वाले, उसके लिए लोकसंग्रह, संभाषणकुशलता और मुख्यतः अपने आदर्श आचरण द्वारा हजारों कार्यकताओं का घना जाल देशभर में बुनने वाले वे एक जादूगर थे। उनके व्यक्तित्व का दर्शन कराने का यह प्रयास अनेक लोगों की स्मृतिशलाका में अदृश्य रूप में विराजमान उनकी सगुण मूर्ति को सब लोगों के समक्ष उपस्थित करने के लिए किया है। इस श्रद्धा से कि—

साधु-महात्मा यहाँ हो गये,
चरित्र उनके तनिक निहारो।
हम भी उनके समान हों, यह
बोध जगे बुद्धि में विचारो।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट

परिशिष्ट : १

राष्ट्रधारा का पुण्य-प्रवाह

(श्रीमदाद्यशंकराचार्य चरित्र-ग्रंथ की प्रस्तावना)

हमारे राष्ट्र जीवन का भागीरथी-प्रवाह आदिकाल से चला आ रहा है। पुण्य-सलिला गंगा का वैसे तो एक-एक जलकण पवित्र है तथा उसमें किसी भी स्थान का अवगाहन मुक्तिप्रद है, तथापि कुछ स्थानों को विशेष महत्त्व प्राप्त हो गया है। हिमालय की गोद को छोड़कर भारत भूमि पर ललकते हुए घुटनों चलने वाली गंगा हरिद्वार में अपना निराला ही महत्त्व रखती है। यमुना जब काला-काला कालकूट लाकर शिवस्वामिनी को देती है तो वह शिव ही की भाँति सहर्ष जहाँ उसका पान कर जाती है वह प्रयाग तो तीर्थराज ही हो गया है। इसी भाँति भारतीय राष्ट्रत्व के प्रवाह का कण-कण पवित्र है। किसी भी स्थान अथवा काल का विचार चित्त को निर्मल करके राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण कर देता है, किन्तु जिस काल में तीर्थस्वरूप महापुरुषों का आविर्भाव हुआ है उसका महत्त्व हमारे जातीय जीवन में और भी अधिक है। तीर्थों का महत्त्व चाहे गंगा के तट पर अविस्थित होने के कारण ही क्यों न हो, किन्तु वहाँ की यात्रा प्रत्येक भक्त के जीवन की अभिलाषा रहती है। महापुरुषों के जीवन और यश की स्मृति, जनसाधारण के चित्त पर उनका प्रभाव और जातीय चरित्र-गठन में उनके द्वारा प्रवर्तित आदर्शों की अनुप्राणना राष्ट्र के लिए अमूल्य सम्पत्ति और शक्ति का झरना है। उनका चिन्तन, विचार और आलोचना जाति में नित्य नवीन उद्दीपना, उत्साह और सजीवता उत्पन्न करती है। इन पुण्य-स्थलों पर जीवनदायिनी जातीय जाह्नवी में अवगाहन को किसका मन नहीं चाहेगा? और फिर श्रीमच्छंकराचार्य की स्थिति तो तीर्थराज प्रयाग के समान है, यदि वहाँ भक्तों की भीड़ लग जाये तो कौन आश्चर्य?

हमारे राष्ट्र-निर्माताओं में श्रीमच्छंकराचार्य का स्थान बहुत ऊँचा है। कई विद्वानों ने तो उनको आधुनिक हिन्दू धर्म का जनक ही कहा है। मन्दिर में मूर्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की स्थापना और प्राण-प्रतिष्ठा करनेवाले आचार्य को ही यद्यपि कई बार मन्दिर का निर्माता कहा जाता है, तो भी अपनी छैनी और हथौड़े की एक-एक चोट से मूर्ति को स्वरूप देने वाले शिल्पी तथा मन्दिर को बनाने वाले अनेकानेक राज और कारीगरों को भी नहीं भुलाया जा सकता। उस सम्पूर्ण जन-समुदाय के परिश्रमों को भुलाना कृतघ्नता ही नहीं अपितु सामाजिक जीवन के विधायक नियमों की अनभिज्ञता भी प्रकट करना है। राष्ट्र का जीवन एक दिन में अथवा दो-चार वर्षों में नहीं बना-बिगड़ा करता और न कोई महापुरुष ही राष्ट्र-जीवन के संस्कारों से पूर्णतः निर्लिप्त होकर अपनी मानसिक, आध्यात्मिक अथवा शारीरिक शक्तियों का विकास करके राष्ट्रजीवन का निर्माण कर सकता है। महापुरुष तो जातीय साधना के विग्रह-स्वरूप हैं। वे तो समाज में वर्षों से होने वाली विचार-क्रांति का दृष्ट फल होते हैं। उनकी अलौकिक शक्ति और ऐश्वर्य, सर्वमुखी प्रतिभा, अखण्ड कर्ममय जीवन तथा सर्वव्यापी प्रभाव को देखकर हमारी आँखें इतनी चौंधिया जाती हैं कि हम उस महापुरुष को उत्पन्न करने वाली जीवनधारा को बिल्कुल ही भूल जाते हैं। जिस समाज में वह उत्पन्न होता है, उसका कुछ विचार ही नहीं करते। ज्वालामुखी के विस्फोट को देखकर धीरे-धीरे रिसते हुए पानी की ओर ध्यान नहीं जाता। प्रस्फुटित पुष्प के सौरभ में वृक्ष का विस्मरण हो जाता है। शायद इस वृत्ति की ओट में हमारा व्यक्तिगत स्वार्थ ही छिपा हो, क्योंकि किसी महापुरुष को समाज का पूर्णतः बनाने-बिगाड़ने वाला मानकर स्वयं समाजकार्य की जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं। वास्तव में तो महापुरुष व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन को अनुप्राणित करता हुआ कार्य की जो शक्ति और प्रेरणा देता है वह स्वयं समाज के सामूहिक प्रयत्नों से पहले ही ग्रहण कर चुका होता है। जातीय प्राणों की इसी आभ्यन्तरिक जीवित साधना-धारा का स्वरूप भिन्न-भिन्न युगों में विशेष-विशेष महापुरुषों की साधना और सिद्धि के द्वारा युगोचित आकार और वेश-भूषा से सुसज्जित होकर प्रकट होता है। अतः किसी भी महापुरुष को समझने के पूर्व जातीय जीवन की इस साधना के स्वरूप को समझना आवश्यक होगा। युगपुरुष श्रीमच्छंकराचार्य का महत्त्व भी उस युग की प्रवृत्तियों का ज्ञान करके ही समझा जा सकेगा।

जनसाधारण स्वामी शंकराचार्य को बौद्ध धर्म के विनाशक तथा हिन्दू धर्म के संस्थापक के रूप में देखता है तो कई विद्वानों को उनमें 'प्रच्छन्न बौद्ध' दृष्टिगोचर होता है। सत्यांश दोनों ही चित्रों के पीछे है क्योंकि उनके युग की सम्पूर्ण सहस्राब्दी का इतिहास केन्द्रापगामी बौद्ध धर्म तथा केन्द्राभिमुखी हिन्दू धर्म के पारस्परिक संघर्ष तथा समन्वय का इतिहास है। अतः हमको बौद्ध धर्म के जन्म से लेकर स्वामी शंकराचार्य के काल तक बौद्ध धर्म के विकास और प्रवृत्तियों का तथा साथ ही साथ हिन्दू धर्म की भिन्न-भिन्न प्रवत्तियों का सिंहावलोकन करना होगा।

जिस समय महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ उस समय वैदिक कर्मकाण्ड के विरुद्ध विद्रोह का सूत्रपात हो चुका था। कर्मकाण्ड इतना बढ़ गया था कि लोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने हृदय की सद्वृत्तियों के विकास के स्थान पर केवल यज्ञ-यागादि को ही महत्त्व देते थे, आत्मा की उन्नति के स्थान पर बाह्योपचारों एवं कर्मकाण्ड की ओर ही ध्यान था तथा विश्वास था कि इसी के सहारे हमको स्वर्ग प्राप्त हो जायेगा। परिणामस्वरूप स्वर्णपात्र में विष भरा जाने लगा। बाह्यतः धार्मिक पण्डितों के मन में भी जघन्य वृत्तियों का समावेश होने लगा। दया, शान्ति, अक्रोध और अहिंसा का स्थान क्रूरता, क्रोध और हिंसा ने ले लिया। क्षमा कायरता का चिह्न समझी जाने लगी। सामाजिक विभेद बढ़ने लगे; एक वर्ण दूसरे वर्ण से द्वेष करने लगा। त्यागहीन, वृत्तिहीन तथा पतित विचारों से पूर्ण ब्राह्मण अपनी श्रेष्ठता का दावा करते थे; समाज का नेतृत्व अपनी बपौती समझ बैठे थे। उधर क्षत्रिय ढोल में पोल देखकर, केवल उसका उच्च स्वर सुनकर उसकी प्रभुता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। फलतः चारों ओर घृणा और द्वेष का साम्राज्य था। आत्म-प्रवंचना का सबके ऊपर अधिकार था। समाज की जब ऐसी स्थिति रहती है तब उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है। ऐसे समय में शरीर के मुटापे को दूर करके उसकी जीवनशक्ति बढ़ानी पड़ती है। महात्मा बुद्ध के पूर्व ही यह विचारों में क्षोभ पैदा हो चुका था। उपनिषदों में विद्रोह का क्षीण स्वर सुनाई देता है। किन्तु भागवत धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के रूप में यह विद्रोह हम को स्पष्ट और निश्चित स्वरूप धारण किये हुए मिलता है।

भागवत धर्म का विद्रोह हल्का था। उसने विद्रोह की लहर में तथा भावना के आवेश में आकर जो कुछ सामने आया उसे नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया। रोग के साथ रोगी के प्राण लेने पर उतारू नहीं हुआ। उसने कर्मकाण्ड का विरोध किया, समाज-व्यवस्था में रूढ़िवाद का विरोध किया, किन्तु अपनी पूर्व-परम्पराओं, धर्म-ग्रन्थों तथा समाज-व्यवस्था के आधार को किसी भी प्रकार का धक्का नहीं लगाया। भागवतधर्मी भगवान् कृष्ण ने जहाँ वैदिक इन्द्र आदि देवताओं की पूजा-अर्चा बन्द करके गोवर्धनपूजा की पद्धति चलायी, वहाँ वेदों तथा वैदिक व्यवस्था के प्रति पूर्ण आदर की भावना भी दिखायी है। जीवन में यज्ञ-यागादि का विरोध करते हुए भी युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया तथा स्वयं उसमें प्रमुख स्थान ग्रहण किया। भागवत धर्म का विरोध बुराई से था, न कि सम्पूर्ण व्यवस्था से ही। किन्तु बौद्ध धर्म का विरोध यहाँ तक सीमित नहीं रहा। गेहूँ में कुछ कंकड़ दिखने पर उन्होंने सबका सब अनाज ही फेंक दिया। कर्मकाण्ड में हिंसा देखकर उन्होंने केवल कर्मकाण्ड का ही विरोध नहीं किया अपितु वेद और ब्राह्मणों को ही सब पापों की जड़ समझकर उनकी सत्ता ही निर्मूल कर दी। प्राचीन, चली आने वाली पद्धतियों को पूर्णतः त्याग दिया। उन्होंने अपना प्रचार संस्कृत के स्थान पर पालि में किया। वर्ण-व्यवस्था को ठुकरा दिया तथा इस प्रकार वैदिक परम्परा तथा व्यवस्था से अपने सम्बन्ध का पूर्णतः विच्छेद कर लिया।

वैदिक धर्म में परिवर्तन तो सदैव ही होते आये हैं। यह धर्म तो गतिशील है, गंगा के प्रवाह के समान चैतन्ययुक्त है, जीवित है; जोहड़ के जल के समान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थिर, जड़ एवं मृत नहीं। धर्म में सदैव ही नवीन विचारों का आगमन होता रहा है तथा पुरानों में परिवर्तन एवं विकास होता रहा है, किन्तु प्रत्येक नवीन परिवर्तन प्राचीन से सम्बन्धित रहा। प्रत्येक नवीन आन्दोलनकारी ने अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा का भाव रखा। प्रत्येक नवीन सुधारक अपनी प्राचीन परम्परा को मानने वाले रहे, अपने पूर्वजों तथा उनकी कृतियों का सम्मान करते रहे तथा समय के साथ नवीन विचारों के प्रवर्तक भी बने। मूल से सम्बन्ध होने के कारण उनके नवीन विचारों से राष्ट्रजीवन को किसी भी प्रकार का धक्का नहीं लगा; हाँ, उसमें विकास अवश्य होता रहा। अनादि काल से चली आयी राष्ट्रीय परम्परा को तोड़ने का प्रयत्न अभी तक किसी ने नहीं किया था। किन्तु महात्मा बुद्ध ने और उनसे भी अधिक उनके अनुयायियों ने अपनी प्राचीन परम्परा से बिल्कुल सम्बन्ध-विच्छेद ही कर लिया। अनन्त ज्ञान के आगर वेदों से अपने मत की पुष्टि करने के स्थान पर उन्होंने वेदों को अपनी धार्मिक व्यवस्था में कोई स्थान नहीं दिया। ईश्वर तथा वेदों के प्रति महात्मा बुद्ध का यह उदासीनता का भाव उनके अनुयायियों में विरोध के रूप में परिवर्तित हो गया। यहाँ तक कि हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म एक दूसरे के विरोधी हो गये।*

धरती पर वृक्ष लगाकर उसके अन्दर से पोषण-तत्त्व प्राप्त करते हुए वृक्ष बढ़े, इसके स्थान पर उन्होंने अलग गमले में वृक्ष लगाया। गमले में लगा वृक्ष होने के कारण जहाँ यह सुविधा थी कि इसको देश-देशान्तर में चाहे जहाँ ले जाओ, वहाँ इसकी वृद्धि भी रुक गयी। घास के समान व्यापक होकर भी यह वट वृक्ष के समान विशाल न हो पाया। भारत की सम्पूर्ण परम्पराओं तथा वैदिक धर्म एवं भागवत धर्म का संबन्ध भारत की भूमि, पर्वत, नदी, वन आदि से अटूट रूप से जुड़ा हुआ है। बौद्ध धर्म ने जहाँ प्राचीन परम्पराओं का विनाश किया, वहाँ इन परम्पराओं की आधारभूमि तथा उन परम्पराओं को मानने वाले पूर्वजों से भी अपना संबन्ध तोड़ लिया। उनसे पूर्व के महर्षि, राम और कृष्ण का उनके जीवन में कोई महत्त्व नहीं रह गया। अपने पूर्वजों के संबन्ध में जिनके मन में अश्रद्धा का भाव उत्पन्न हो गया हो तथा अपनी भूमि के संबन्ध में जहाँ कोई

---

*बुद्ध तक हमारा धार्मिक विचार धीरे-धीरे बिना किसी उलटफेर के ऐसा विकसित होता आया था कि नवागत विचारों की नवीनता पर देश का ध्यान ही नहीं गया। हमारा धार्मिक अंकुर धीरे-धीरे बढ़ता हुआ गगनावलम्बी वृक्ष हो गया था; किन्तु प्रत्येक नये आचार्य ने नवीन विचारों का प्राचीनता के साथ ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण किया था कि यह कोई न देख पाया कि यह अंकुर किस समय और कैसे-कैसे गगनावलम्बी वृक्ष बन गया। महात्मा बुद्ध ने उसकी टेढ़ी शाखा तथा पल्लवों का ऐसी शीघ्रता से काट-छाँट किया और धार्मिक संसार में ऐसी भारी खलबली मचा दी कि मानो जादू के जोर एक से दूसरा वृक्ष खड़ा कर दिया। ऐसी दशा में इनके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ जाना स्वाभाविक था तथा हुआ भी ऐसा ही। इसलिए यह धर्म भी व्यक्तित्वप्रधान हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ममत्व न रह गया हो, वहाँ अराष्ट्रीय भावों का उद्गम स्वाभाविक ही है। अपनेपन का यह अभाव लेकर जब बौद्ध धर्म देश-देशान्तर गया तो जहाँ एक ओर उनको उसने ज्ञान की शिक्षा दी, वहाँ उनकी भी बहुत सी बातें अपनायीं। इतना ही नहीं, वह धीरे-धीरे अपने देशवासियों की अपेक्षा धर्म-बान्धवों को अपने अधिक निकट समझने लगा! विदेशी आक्रमणकारियों ने भी उसकी इस अराष्ट्रीय वृत्ति का लाभ उठाया। उनमें से बहुतों ने बौद्ध धर्म को अपनाया तथा बौद्धों ने भी देश की स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाले इन धर्मबन्धुओं को अपनाया। 'उन दिनों बौद्ध धर्म मानो एक अत्याचारी वर्ग का पोष्य पुत्र बना हुआ था; और जब उस वर्ग के अत्याचारों का निर्मूलन हुआ तब उसके साथ उस धर्म का भी अवश्य ही पतन हुआ। बौद्ध धर्म उस समय राष्ट्रीयता के उच्च तल से पतित हो चुका था और उसने अहिन्दू स्वरूप धारण कर लिया था।'

ऐसी दशा में बौद्ध धर्म का उन्मूलन एक राष्ट्रीय कर्तव्य हो गया। एक के बाद एक महापुरुष उत्पन्न हुए और भारत से इस अराष्ट्रीय प्रवृति को नष्ट करने के लिए जुट पड़े। इनमें कुमारिल भट्ट और शंकर का नाम तो सभी जानते हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे सन्त-महन्त, ऋषि-महर्षि हुए जिन्होंने इस राष्ट्रकार्य में हाथ बँटाया। आज चाहे हम उनके नाम न जानते हों, उनका गुण-गान न करते हों, परन्तु हमारे हृदय की राष्ट्रभक्ति की भावना अनजाने में चुपके से उन पर श्रद्धा के दो फूल अवश्य चढ़ा देती है। उन्मूलन के इन प्रयत्नों में हमारी जो विशेषता रही है, वह है हमारी भावात्मक कल्पना तथा रचनात्मक कार्यक्रम की योजना। हमारे महापुरुषों ने प्रतिक्रियात्मक अथवा विरोधात्मक एवं विनाशात्मक दृष्टिकोण लेकर बौद्ध धर्म का उच्छेद नहीं किया, यदि ऐसा किया होता तो न उन्हें सफलता ही मिलती और न भारत के वांछित जीवन की ही सृष्टि होती। विनाशात्मक भावना से कार्य करने पर राष्ट्र के गतिमय जीवन में स्तब्धता तथा अभाव की सृष्टि होती, जीवन में एक शून्यता का आविर्भाव होता जो कि मृत्यु की जननी होती। इसके स्थान पर अपने रचनात्मक कार्यक्रम के कारण उन्होंने अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों का विनाश ही नहीं किया अपितु उनका स्थान भी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों ने लिया। इसीलिए इस युग में हमको बौद्धधर्म को नष्ट करने के इतने प्रयत्न नहीं दिखाई देते जितने कि अपने परम्पराप्राप्त राष्ट्रीय वैदिक धर्म को पुष्ट और व्यापक करने के दिखाई देते है। राष्ट्रीयता के प्रखर प्रकाश को चतुर्दिक् प्रसृत करने के प्रयत्न हुए, बस, अराष्ट्रवृत्ति का अंधकार स्वयमेव विलीन हो गया। इस ज्वाला के प्रकाश को प्रखरतम बनाने के लिए साधु-संन्यासी, कवि-कलाकार, पुराणकार सूत और स्मृतिकार मुनि, दर्शनों के जन्मदाता ऋषि-महर्षि और भक्ति की सौंदर्यमयी सरस धारा प्रवाहित करने वाले सन्त-महन्त, पुनः अश्वमेध करके भारत में चातुरंत साम्राज्य-निर्माण करने वाले दिग्विजयी सम्राट् और भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक एकता को राजनीति के कलेवर से पुष्ट करने वाले राजनीतिज्ञ नीतिकार, शिल्पी और वाणिज्य-व्यवसायी, सब में मानो एक होड़ लग गयी थी। सब के सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहमहमिका वृत्ति से आगे दौड़ पड़ते और राष्ट्र की इस वृद्धिंगत शक्ति को जीवन-सर्वस्व अर्पित करने के लिए लालायित दिखाई देते थे। यह राष्ट्रीयता की भावना केवल थोड़े से तत्त्वज्ञ एवं विचारवान् लोगों तक ही सीमित नहीं थी अपितु सम्पूर्ण जनसाधारण इस भावना से ओतप्रोत दिखाई देता था और इसलिए इस युग में हमको एक अपूर्व कर्मचेतना भी दृष्टिगोचर होती है।

यह व्यापक कर्मचेतना महात्मा बुद्ध से लेकर स्वामी शंकराचार्य के सम्पूर्ण युग में पायी जाती है। एक ओर तो महात्मा बुद्ध ने सोयी जनता को जगाकर जो असाधारण विचार-क्रांति उत्पन्न की, उसके परिणामस्वरूप तथा दूसरी ओर वैदिक धर्म के संघर्ष और समन्वय के परिणामस्वरूप इस युग में जैसी कर्मचेतना जाग्रत हुई, वैसी व्यापक प्रभाव करनेवाली कर्मचेतना राष्ट्रों के जीवन में यदा-कदा ही मिलती है। इस युग का जीवन स्थिर एवं गतिहीन नहीं है, अपितु वह सतत गतिशील है, उसमें जीवन की प्रेरक शक्ति कार्य करती हुई दिखाई देती है। उस समय प्रत्येक के लिए द्वार खुला था, विस्तीर्ण कार्यक्षेत्र सामने पड़ा था। बाँध टूट जाने पर जैसे पानी चारों ओर फैल जाता है, वैसे ही भारतीय चारों ओर बढ़ने लगे। प्रत्येक क्षेत्र में विकास की चरम सीमा को चूमने की महती आकांक्षा जाग्रत हो गयी। वर्षों की प्यासी भूमि जैसे वर्षा होते ही चारों ओर हरीभरी दिखाई देने लगती है, वैसे ही जनसमाज का अतृप्त आत्मा भी तृप्त होकर अनेक धाराओं में फूट पड़ा। धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में हम लोग आगे बढ़े। साहित्य और कला, दोनों में ही वह धारा फूट पड़ी कि सम्पूर्ण भारत को आप्लावित कर दिया। इसी काल में मनुष्य मात्र को दु:खों से निवृत्ति पाने का सत्यमार्ग बताने की अमिट चाह लेकर हमारे धर्म-प्रचारक देश-विदेश में फैल गये तथा दुनिया के दूर से दूर कोने में भी भारत की विजय-पताका फहरायी। जावा, सुमात्रा, बाली, स्याम, हिन्दचीन, चीन, जापान, बलख्र,बुखारा, मिश्र, यूनान और रोम, चारों ओर ज्ञानदीप लेकर अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हुए मनुष्य के हृदय में आशा की ज्योति जगायी। एक ओर जहाँ यह सांस्कृतिक साम्राज्य विस्तीर्ण हो रहा था, दूसरी ओर हमारे दिग्विजयी सम्राटों ने बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित किये, समुद्र के पार जाकर अपने उपनिवेश बसाये तथा वृहत्तर भारत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक कल्पना को स्थूल आधिभौतिक स्वरूप प्रदान किया। हमारे व्यापारियों ने दूर-दूर देशों से व्यापार करके भारत को स्वर्ण से पाट दिया। भारत की श्री और वैभव का, सुख और शान्ति का वह युग था। इतिहासकार इस युग को भारत का स्वर्णयुग कहते हैं।

हम उस काल को भारत का स्वर्णयुग उस समय के बड़े-बड़े साम्राज्य, अपार धन-राशि, अतुल वैभव, मनोरम कला तथा उच्च साहित्य के कारण नहीं कहते। आज उनमें से कुछ भी हमारे पास नहीं है। बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गये, वह अपार धनराशि ढह गयी, वैभव विलीन हो गया तथा कला और साहित्य कुछ विद्वानों की खोज एवं मनोरंजन की सामग्री मात्र रह गये हैं। उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युग की अक्षय देन तो है हमारी एकराष्ट्रीयता की भावना, भारत के एकत्व तथा अखण्डत्व की कल्पना तथा उस भावना को मूर्त स्वरूप देने वाली संस्थाओं की स्थापना और उसको चिरन्तन बनाये रखने वाले संस्कारों की योजना। वैसे तो हमारी राष्ट्र की कल्पना वैदिक काल से ही चली आ रही है और जब अन्तःप्रकृति का बाह्य प्रकृति पर प्रक्षेप करते हुए अपने हृदय की अव्यक्त श्रद्धा को व्यक्त करने के लिए ऋषि गा उठते हैं,

'इमे मे गंगे यमुने सरस्वति शतद्रि स्तोमं सचता पुरुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रुणुह्या सुषोमया।।
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

तब उस राष्ट्रभक्ति की कल्पना को एक स्थूल स्वरूप मिल जाता है; राष्ट्र के आत्मा का आधारस्वरूप मातृभूमि का चित्र आँखों के सम्मुख आ जाता है। बौद्ध धर्म के प्रसार से इस राष्ट्रत्व की कल्पना को एक ठेस लगी। ऐसा मालूम होता था कि हिन्दू धर्म तथा हिन्दू राष्ट्र नष्ट हो जायेगा। किन्तु पाताल तक जड़ें पहुँचने के कारण अक्षयवट जिस भाँति बार-बार काटने पर भी हरा हो उठता है, उसी भाँति वैदिक धर्म के वटवृक्ष को भी कई बार काट कर फेंका गया किन्तु यह फिर हरा हो गया क्योंकि इसकी जड़ें भारतवर्ष की भूमि में गहरी जमी हुई हैं; कितनी गहरी, यह आज तक कोई पता नहीं लगा पाया है। बीच में बाँध लगाने से गंगा का प्रवाह रुक नहीं सकता, क्योंकि गंगोत्री से तो सतत धारा बहती ही रहती है। बड़े से बड़ा बाँध बाँधने पर मालूम होगा कि मानो पुण्यसलिला भागीरथी को रोक दिया गया है, अब वह सागर तक नहीं पहुँच पायेगी, किन्तु थोड़े ही दिनों में भूल मालूम हो जाती है। अनन्त स्रोतस्विनी जाह्नवी बाँध को भी नष्ट-भ्रष्ट करती हुई आगे बढ़ती जाती है, अपना मार्ग पूर्ण करके ही रहती है और गंगा के स्रोत कहाँ और कितने हैं यह आज तक कोई नहीं पता नहीं लगा पाया है। बस उसी भाँति हिन्दू धर्म तथा हिन्दू राष्ट्रत्व की प्रगति को भी कई बार रोकने का प्रयत्न किया गया, परन्तु हर बार यह रोकने वालों को ही लेकर आगे बढ़ा है। जैसे कि गंगा बाँध को नष्ट करके भी अपने अंक में तो आश्रय देती ही है, उसके बहुत से पत्थर भी थोड़े दिनों में पापनाशिनी के जलकणों से टकराते-टकराते अपना नुकीलापन नष्ट करके शालिग्राम के रूप में पूजा के भाजन बन जाते हैं, बस उसी भाँति हिन्दू धर्म ने भी इसका मार्ग अवरुद्ध करने वालों को गोद में उठाया और अंक में लेकर आगे बढ़ा। यह ऐसा कर सका क्योंकि इसमें उस समय इतनी शक्ति थी जिसके कारण कि स्वयं ही नहीं, दूसरों को भी अपने साथ ले चलने में समर्थ हुआ। साथ चलने वालों ने भी इसकी शक्ति तथा उदारता और स्नेह देखकर अपना हठ छोड़ दिया, वैर त्याग दिया और इसका स्नेहभाजन बनने में ही अपना कल्याण समझा। इसने भी उनको छाती से लगाया, इतना कि वे इसके अंग ही बन गये और इसके हृदय-सिंहासन पर भी एक ओर स्थान पा सके। स्वामी शंकराचार्य हैं हिन्दू धर्म की इसी समन्वयात्मक वृत्ति के ज्वलन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदाहरण; हजार वर्ष पूर्व काटे गये किन्तु उसी समय से सतत बढ़ते हुए वैदिक धर्म रूपी अक्षयवट के पुण्यफल!

बुद्ध भगवान् ने जब वैदिक धर्म के प्रति विद्रोह का सूत्रपात किया तो वैदिक धर्म शान्त चित्त से बैठा नहीं रहा। उसने समय की गति को पहिचाना और साथ ही इस विद्रोह से देश को होनेवाली हानियों को भी पहिचाना। अतः वैदिक मनीषियों के सम्मुख प्रश्न था वैदिक धर्म को सब प्रकार से सुदृढ़ और युगानुकूल बनाना। उन्होंने विद्रोह के कारणों को समझा तथा उनको दूर भी किया। इतना ही नही, बौद्ध धर्म की समस्त अच्छाइयों को भी उन्होंने अपना लिया। यहाँ तक कि स्वामी शंकराचार्य ने तो भगवान् बुद्ध को विष्णु का अवतार ही घोषित कर दिया। हिन्दू धर्म भी अब केवल कुछ गिने-चुने कर्मकाण्डी विद्वानों की वस्तु नहीं रह गया था अपितु वह भी जनसाधारण की अपनी वस्तु हो गया था। इन सब परिवर्तनों के कारण बौद्ध धर्म भारत में अनावश्यक हो गया। जो भक्तिभाव और नैतिकता लोगों को बौद्ध धर्म में मिलती थी, वही सब अब हिन्दू धर्म में थी; बल्कि यहाँ उससे अधिक था। यहाँ थी अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा, अपनी मातृभूमि की ममता, अपने स्वाभिमान की भावना तथा अपने राष्ट्रीय जीवन को बनाये रखने की महत्त्वाकांक्षा। स्वामी शंकराचार्य के काल तक बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म इतने निकट आ गये थे कि उनके भगवान् बुद्ध को अवतार मानने पर तथा वेदान्त की स्थापना करने पर, जोकि बौद्धों को अपने शून्यवाद से मिलता-जुलता ही प्रतीत हुआ, बौद्ध धर्म का स्वतंन्त्र अस्तित्व अनावश्यक हो गया और वह हिन्दू धर्म में मिल गया। यह ऐक्य, उसके कारण तथा प्रयत्नों के इतिहास का विवेचन हमारे राष्ट्रीय जीवन की विशेषताओं को स्पष्ट कर देता है। जीवनतत्त्वों के सम्बन्ध में हमारा सदा ही आग्रह रहा है तथा उस जीवन को पूर्ण करने के साधनों को हमने युग का परिधान पहिनाने में भी हिचकिचाहट नहीं की है।

वैदिक धर्म पर प्रहार होने पर सबसे पहले तो अपने सब अस्त्रशस्त्रों को ठीकठाक कर संभाला गया तथा चारों ओर से मोर्चेबन्दी की गयी। एतदर्थ अपने धर्म को तर्क की सुदृढ़ नींव पर अवस्थित करने के लिए षट्दर्शनों का निर्माण हुआ। प्रत्येक दर्शन ने अपनी-अपनी पद्धति से वैदिक आदर्शों का अत्यन्त तर्कशुद्ध प्रणाली से प्रतिपादन किया। बाद में हम इन छहों दर्शनों में भी एक अद्भुत समन्वय तथा सामञ्जस्य पाते हैं। जनसाधारण को आकृष्ट करने के लिए बड़े-बड़े मंदिर और मठों की स्थापना की गयी; पुराण और आगमों की रचना हुई। कथा-कहानी द्वारा अपने धर्म के गूढ़ सिद्धांत जन साधारण के सम्मुख रखे गये तथा भक्ति की जो लहर चली उसने सम्पूर्ण जनता को आप्लावित कर लिया। वेदों के प्राचीनतम आदर्श और उपदेशों को नवीन और रोचक ढंग से रखने के लिए ही पुराणों की सृष्टि हुई थी। इन पुराणों ने, जैसा कि हमने देखा, प्राचीन की रक्षा करते हुए नवीन को ग्रहण किया तथा इस प्रकार विद्रोह का शमन करते हुए भी राष्ट्र के आत्मा को जीवित रखा। पुराने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गार्हस्थसूत्रों का स्थान स्मृतियों ने लिया तथा यज्ञयागादि का स्थान मन्दिर और पूजा-अर्चना ने ले लिया। हिन्दू धर्म का स्वरूप बदल गया, परन्तु इसका आत्मा वही बना रहा, क्योंकि अभी भी प्राचीन के प्रति वही श्रद्धा और आदर की भावना थी, वही प्राचीन आदर्श और जीवन की दृष्टि समाज के सम्मुख थी, हाँ उसके साधन बदल गये थे।

राष्ट्रत्व के विकास में स्वदेश का महत्त्व सबसे अधिक होता है। अतः इस युग में स्वतः ही अपनी सम्पूर्ण मातृभूमि के दर्शन का प्रयत्न किया गया। किसी भी मत अथवा सम्प्रदाय के माननेवाले क्यों न हों, उनके सम्मुख हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, आसिन्धुसिन्धुपर्यन्त भारत का चित्र रहता था। प्रत्येक सम्प्रदाय के आचार्यों ने यही प्रयत्न किया कि उनके सम्प्रदाय के लोग सम्पूर्ण भारत को पवित्र मानें। इतना ही नहीं, भारत की इस एकता का प्रत्यक्ष ज्ञान कर सकें, इसके लिए प्रत्येक सम्प्रदाय में तीर्थयात्रा की पद्धति प्रचलित हुई। ये तीर्थ तो सम्पूर्ण भारत के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक बिखरे हुए हैं। सूर्य के बारह मंदिर, गाणपत्यों के द्वादश विनायक, शैवों के अठारहों ज्योतिर्लिंग, शाक्तों के इक्यावन शक्तिक्षेत्र तथा वैष्णवों के अगणित तीर्थक्षेत्र सम्पूर्ण भारत में बिखरे पड़े हैं। इन विस्तृत पुण्यक्षेत्रों के होते हुए प्रान्तीयता की संकुचित भावना का प्रवेश असंभव ही था। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की दक्षिण-यात्रा ने उत्तर-दक्षिण का जो गठबन्धन किया वह जनसाधारण के आचार-विचार और भावना में अटूट हो गया। महाभारतकार ने इसी एकता को दिखाने के लिए एक बार नहीं, दो-दो तीन-तीन बार भारत का एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक अत्यन्त भावुकतापूर्ण वर्णन किया है। पुराणकारों ने भारत की भूमि के कण-कण की पवित्रता का गुणगान किया है।

प्रत्येक मत और सम्प्रदाय के सम्मुख तो सम्पूर्ण भारत का चित्र था ही तथा उनमें से प्रत्येक वैदिक धर्म की परम्परा की रक्षा करते हुए भारतभूमि की यशोवृद्धि का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु इस प्रकार एक ही ध्येय को लेकर कार्य करने वालों में पारस्परिक सहयोग और एकता भी आवश्यक थी। इसीलिए राष्ट्रीय भावना को और भी पुष्ट करनेवाले भिन्न-भिन्न मत और सम्प्रदायों में समन्वय की वृत्ति का विकास भी इस युग में हुआ। इस समन्वय का बहुत कुछ श्रेय श्री स्वामी शंकराचार्य को है। इस समन्वयात्मक कार्य में भी भारत की एकता और अखण्डता का ध्यान रखा गया है। इस प्रकार ऊपर, नीचे, दायें, बायें, चारों ओर एकता का ही प्रसार हुआ। ताने-बाने के समान एक भावनासूत्र को फैलाकर मानो एक वस्त्र का निर्माण किया गया। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के तीर्थक्षेत्र सम्पूर्ण भारत में ताने के समान फैले हुए थे तोउनमें से चार प्रमुख तीर्थक्षेत्रों को छाँटकर उनको सब सम्प्रदायों के आदर और श्रद्धा का स्थान बना दिया। हिमालय के हिमाच्छादित शिखर पर अवस्थित बद्रीनाथ की यात्रा सब प्रान्तों और सब सम्प्रदायों के लोगों के जीवन की कामना रही है। महोदधि और रत्नाकर दोनों ही जहाँ माता के चरण-प्रक्षालन करते हैं वहाँ श्री रामेश्वरम् के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दर्शन करने को जितनी श्रद्धा से शैव जाते हैं उससे भी अधिक श्रद्धा से वैष्णव गंगोत्री का जल लाकर शिवलिंग पर चढ़ाते हैं। "जगन्नाथ का भात, पूछो जात न पाँत" कहकर जिस प्रेम और श्रद्धा से श्री जगन्नाथ जी का प्रसाद पाते हैं वह तो राष्ट्रीय संघटन के लिए संजीवनी का काम करता है। बड़े-से-बड़े शाक्त भी श्री द्वारिकापुरी में जाकर अपनी श्रद्धा के रक्तकण भगवान् वासुदेव कृष्ण के चरणों में अर्पित करके अपने को धन्य समझते हैं। इसी प्रकार पुराणकारों ने जब कहा कि—

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।

तव वे साम्प्रदायिक भावना से बहुत ऊँचे उठकर राष्ट्रीय धरातल से विचार कर रहे थे। ये सातों पुरियाँ मानो भारतीय राष्ट्र के मर्मस्थल हों, उसकी सभ्यता और संस्कृति के केन्द्र हों। एक-एक के साथ अतीत की इतनी घटनाओं का संबंध है कि उनकी स्मृतिमात्र से अपना सम्पूर्ण इतिहास चलचित्र की भाँति आँखों के सामने से गुजर जाता है। इतना ही नहीं, भारतभूमि में कहीं भी कोई स्थान मिला, जिसका प्राकृतिक सौंदर्य हमारी हृत्तन्त्री के तारों को झंकृत करके हमारे अन्तःकरण में कोमल एवं उच्च भावों की सृष्टि करता हो अथवा जिस स्थान का संबंध हमारे पूर्व-पुरुषों, हमारे आदर्श एवं आराध्य राम और कृष्ण अथवा किसी भी महापुरुष के साथ हो, जिससे हमारे राष्ट्रीय इतिहास का घटनाचक्र हमारे मनश्चक्षु के सम्मुख खिंच जाय, बस, उसी स्थान को तीर्थ का स्वरूप मिल गया, वहाँ यात्राएँ प्रारम्भ हो गयीं, मेले लगने लगे और ये मेले और यात्राएँ हमारे जीवन का अंग बन गयीं। हृदय की जो श्रद्धा आज भी लाखों-करोड़ों यात्रियों को सब प्रकार का कष्ट झेलकर माघ के ठिठुरते जाड़े में कुम्भ मेले में स्नान करने को प्रेरित करती है, उसका स्रोत बहुत गहरा है। उस महात्मा का राष्ट्र कितना आभारी होगा जिसने यह श्रद्धा-निर्माण करने वाले संस्कारों की नींव डाली। ये कुम्भ के मेले क्या हैं मानो घूमते-फिरते राष्ट्रीय विद्यालय हैं, राष्ट्रीय सम्मेलन हैं जो कि भारत में चार प्रमुख स्थानों, हरिद्वार, प्रयाग, उज्जयिनी और नासिक में प्रति तीसरे वर्ष होते रहते हैं। लाखों की संख्या में साधु-संन्यासी वहाँ आते हैं और करोड़ों की संख्या में जनता एकत्रित होकर उनके दर्शन और उपदेशों से अपने हृदय के कल्मष को धोकर जीवन के पावित्र्य का अनुभव करती है। जहाँ सभी सम्प्रदायों के लोग इस प्रकार प्रति तीसरे वर्ष एकत्रित होते रहते हों वहाँ भारत की समन्वयात्मक जलवायु में एकात्मकता का निर्माण हुए बिना रह ही नहीं सकता।

अपने दिन-प्रतिदन के व्यवहार में भी यह राष्ट्रीयता की भावना पुष्ट होती रहे, इसके लिए दैनिक आचरण में भी राष्ट्र-भावना के पोषक संस्कारों का समावेश कर दिया गया था। प्रातः उठते ही, भूमि पर चरण रखते ही, अत्यन्त विनीत भाव से हिंदू माता को नमस्कार करता हुआ कहता है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समुद्रवसने देवि, पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं, पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

वही सम्पूर्ण भारत का चित्र और उसके सम्मुख हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा ही मानो छलकी पड़ती हो। फिर जो प्रातःस्मरण करता है उसमें तो एक के बाद एक अपने पूर्वजों का स्मरण करता हुआ उनके समान बनने की अभिलाषा मन में करता है। उस प्रातःस्मरण में प्रान्त और सम्प्रदाय की संकुचित भावना को स्थान नहीं है;वहाँ तो शत-प्रतिशत विशुद्ध राष्ट्रीयता की ही भावना है। स्नान और सन्ध्या में भी राष्ट्रीयता के जनक संस्कारों का समावेश किया गया है। स्नान करते समय अथवा संकल्प के लिए जल लेकर जब हम कहते हैं—

गंगे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि, जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

तब भारत की समग्र पवित्र नदियों का आवाहन कर लेते हैं। इन्हीं नदियों के समान ही सात वन और सात पर्वत, चार सरोवरों को, जो कि सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं, हमने अपने जीवन में महत्त्व का स्थान दिया है।

सब सम्प्रदायों के लोगों में एकता स्थापित करने के लिए ही हमारे यहाँ त्रिमूर्ति की कल्पना की गयी जिसके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक ही परब्रह्म के भिन्न स्वरूप हैं। शैव और वैष्णवों में किसी भी प्रकार का विरोध न रहे, इसीलिए तो पुराणकारों ने शिव और विष्णु को एक दूसरे का भक्त बना दिया। शिव यदि विष्णु की उपासना में लीन तथा विष्णु के चरण-कमल से निकली हुई गंगा को धारण किये हुए हैं तो विष्णु के अवतार राम भी बिना शिव की आराधना किये हुए तथा श्री रामेश्वरम् के मंदिर की स्थापना किये हुए अपनी विजययात्रा में आगे नहीं बढ़ते। अपने वरदान के कारण जब शिवजी भस्मासुर और रावण जैसे राक्षसों से संत्रस्त होते हैं तो भगवान् विष्णु ही उनकी सहायता को दौड़ते हैं। गणपति और शक्ति का तो भगवान शिव से कौटुम्बिक सम्बन्ध ही जोड़ दिया है। इस प्रकार सब सम्प्रदायों के आराध्य देवों को एक-दूसरे से सम्बन्धित करके हमारे पुराणकारों ने पारस्परिक प्रेम और सौजन्यता का बीज बोया है। श्री शंकराचार्य ने तो पंचायतन की पद्धति चलाकर इस सम्बन्ध को और भी सुदृढ़ कर दिया। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति पाँचों देवताओं—विष्णु, शिव, शक्ति, गणपति और सूर्य की पूजा करता है। इस युग की इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति और सहिष्णुता की वृत्ति का ही परिणाम है कि भारतीय सदा से प्रेम और सौहार्द से रहते आये हैं।

कर्म, भक्ति और ज्ञान की तीनों धाराओं का भी समन्वय हम इस युग में पाते हैं। भगवान् कृष्ण ने स्वयं ही गीता में इन तीनों का सुन्दर समन्वय कर दिया था और गीता का इस युग में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया था। स्वयं शंकराचार्य ने अपने जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति का सुन्दर समन्वय किया। उन्हीं के प्रयत्नों के कारण प्रस्थानत्रयी को मान्यता प्राप्त हो गयी। प्रस्थानत्रयी को महत्त्व देकर जहाँ एक ओर उन्होंने बौद्धों के वेद-विरोधी दुराग्रह से मुक्ति पा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ली, वहाँ वेदों के आत्मा को भी उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता के ज्ञान द्वारा जीवित रखा।

भारत की इस अखण्डता और एकता को स्थूल स्वरूप देने के लिए एक के बाद एक सम्राट् हुए जिन्होंने एकछत्र चातुरन्त साम्राज्य स्थापित किये। सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर हर्ष और पुलकेशी तक अनेकानेक सम्राटों ने भारत की इस एकसूत्रता को बनाये रखने का प्रयत्न किया। इतना ही नहीं, भारत के एकजीवन को मानो संसार के सामने प्रकट करने के लिए, जब-जब उत्तर में विदेशियों का आघात हुआ तो केवल उत्तर ही नहीं, दक्षिण को भी मर्मान्तक पीड़ा पहुँची। सिर पर चोट लगते ही जैसे सम्पूर्ण शरीर की शक्तियाँ प्रतिकार करने को उद्यत हो जाती हैं, उसी प्रकार उत्तर में शक और हूणों के आक्रमणों का प्रतिरोध दक्षिण से आने वाले शकारि विक्रमादित्य और यशोधर्मन् की शक्तियों ने किया। इस प्रकार सुख और दुःख में, जय-पराजय में और वैभव-पराभव में जो एकता और अभिन्नता प्रकट की गयी उसने हमारे राष्ट्र को एक जीवन के सूत्र में संघटित कर दिया।

हमारे साहित्यकारों ने भी राष्ट्र की इस एकात्मता को ही वाणी का परिधान पहिनाकर जन-समाज के सम्मुख उपस्थित किया। रामायण और महाभारत हमारे राष्ट्र के साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति बन गये। भगवान् राम और कृष्ण का चरित्र आदर्श के रूप में राष्ट्र के सामने उपस्थित हुआ। इनके जीवन में हिन्दू समाज ने अपनी हृदय की भावनाओं का व्यक्तीकरण पाया। हमारे साहित्यकारों ने भी राष्ट्र की श्रद्धा के इन केन्द्रों के प्रति अपनी श्रद्धा के दो फूल चढ़ाकर आत्मसुख का अनुभव किया तथा जनता की इस श्रद्धा को अमर बनाया। इस युग में कोई कवि ऐसा नहीं दिखता जिसने राम और कृष्ण पर काव्य न लिखे हों; जिसने अपने काव्य का विषय रामायण और महाभारत में से न चुना हो। इतना ही नहीं, इन साहित्यकारों ने ही इस युग के जीवन का सम्बन्ध प्राचीन से जोड़ दिया। जैसा कि कहा गया है, साहित्य अपने समय के समाज का दर्पण होता है जिसमें समाज की मनोभावनाओं का ही प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। अब यदि साहित्यकार अपने पात्र उस युग से न छाँटकर प्राचीन से छाँटता है तो प्राचीन और नवीन का एक अद्भुत एवं जीवनप्रद सम्मिश्रण उसके साहित्य में मिलता है। अपनी भावनाओं का प्राचीन महापुरुषों की भावनाओं से सामञ्जस्य अनुभव करके जनता एक सुख, समाधान और शक्ति का अनुभव करती है। समुद्रगुप्त की दिग्विजय का वर्णन जब कवि ने रघु की दिग्विजय के रूप में किया तो भारत को अखण्डता के एक सूत्र में ग्रथित करने वाली परम्परा को कितनी शक्ति प्राप्त हुई होगी! इन साहित्यकारों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही सम्पूर्ण देश में वेदवाणी संस्कृत, देवी भारती का समान रूप से आदर होने लगा। भारत की प्रान्तीय प्राकृत भाषाएँ होते हुए भी संस्कृत हमारी राष्ट्रभाषा बनकर हमारे विचार-विनिमय, भावना-प्रदर्शन, पवित्र संस्कार तथा ज्ञान-विज्ञान के प्रसार का साधन बनी और सबने इसके कलेवर को समान रूप से पुष्ट किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे नीतिकार और स्मृतिकारों ने भी हमारी इस एकता की भावना को बढ़ाने में बड़ी सहायता की। महर्षि चाणक्य ने जहाँ एक ओर 'पृथिव्यैः समुद्रपर्यन्ताया एकराट्' के प्राचीन आदर्श को सत्यसृष्टि में परिणत करने के लिए सम्राट् चन्द्रगुप्त को प्रेरित किया, वहाँ दूसरी ओर राजनीति और अर्थशास्त्र के गूढ़तम नियमों की रचना करके राष्ट्र की एकसूत्रता बनाये रखने का प्रबंध कर दिया। कौन अपना है और कौन पराया, इसका ठीक-ठीक ज्ञान भी राष्ट्रत्व की भावना के लिए पोषक होता है और फिर परायों से विजित होकर न रहने की भावना तथा अपने जीवन को बनाये रखने का आग्रह तो इस भावना को और भी पुष्ट करता है। हम अपने नीति-साहित्य में यह भावना सर्वत्र पाते हैं। जब महर्षि चाणक्य ने घोषणा की कि 'न त्वेवार्यस्य दासभावः,' तब मानो राष्ट्र का स्वाभिमान ही पुकार उठा था। अदासत्व की कल्पना के पीछे राष्ट्रत्व के अस्तित्व का भान तथा दासत्व से घृणा में राष्ट्र का स्वाभिमान अन्तर्निहित है। हमारी यह भावना बराबर बनी रही है कि हम स्वयं अपने स्वामी बने रहें; ईश्वरदत्त देश आर्यावर्त में हम स्वतंत्रतापूर्वक रह सकें। यह एक ऐसी भावना है जो राजनीतिक भी है और भौगोलिक भी। इसके अनुसार लोग आरम्भ से ही यह समझते रहे हैं कि आर्यावर्त में हिन्दुओं का ही राज्य होना चाहिए; इसका उल्लेख मानवधर्मशास्त्र (२, २२, २३) तक में है; और यह भावना पतंजलि के समय से मेधातिथि [आक्रम्याक्रम्य न चिरं तत्र म्लेच्छा स्थातारो भवन्ति] और बीसलदेव तक बराबर लोगों के मन में जीवित रही है। [आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छविच्छेदनाभिः।]*इस भावना को इस युग के तत्त्वज्ञों ने अत्यन्त पुष्ट किया। मनुस्मृति ने तो सम्पूर्ण भारतवर्ष का वर्णन करके इसको पुण्यभूमि अभिहित किया है तथा शेष सम्पूर्ण देशों को म्लेच्छ कहा है। "भारतं नाम तद्वर्षं भारती यत्र संततिः" जैसे वाक्य भारत देश और उसके जनसमूह के आत्मा का ही दिग्दर्शन कराते हैं। इसी संतति का वर्णन करते हुए मनु ने कहा—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्, पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

और इस गुरुस्थान के योग्य चरित्र की महत्ता प्राप्त करने के निमित्त जब अपने नियमों की रचना की तो सम्पूर्ण देश ने अपने मन में महत्त्वाकांक्षा लेकर उन नियमों का एक सा पालन किया। भारत की सम्पूर्ण जनता ने अपने आचार-विचारों को स्मृतिकारों के मापदण्ड से मापा और एकता के ढाँचे में ढालनेवाले इन संस्कारों को अपने जीवन में स्थान दिया। परिणामतः सम्पूर्ण भारत में एक रीति-नीति, एक नियम, उपनियम और एक व्यवहार की सृष्टि हुई। इन्हीं नीतिकारों ने हमारी ग्राम-पंचायतों को जन्म दिया जिनका स्वरूप सम्पूर्ण भारत में एक सा था तथा जिन्होंने ऊपर के शासन में परिवर्तन होते हुए भी भारतीय आत्मा की स्वतन्त्रता और एकात्मता को बनाये रखा है।

---

*काशीप्रसाद जायसवाल—अन्धयुग, पृ. १०४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में राष्ट्र के आत्मा का सर्वांगीण विकास हुआ तथा वह अत्यन्त बलवान बना। भारतवर्ष के एक ओर से लेकर दूसरे छोर तक फैला हुआ सम्पूर्ण हिंदू समाज समान विचारधारा एवं कर्तृत्व से समन्वित होकर, जीवन की एकरसता से परिपूर्ण होकर, एक संस्कृति के आधार पर अखण्ड राष्ट्रीयता के पक्के रंग में रंग गया। इस युग के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही देश की जो एकराष्ट्रीयता परिपक्व रूप में प्राप्त हुई वह पीछे के राजनीतिक पराजय के काल में भी अक्षुण्ण बनी रही। ईसा की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अरब से जो आँधी उठी थी उसने यूनान, मिश्र, स्पेन और फारस आदि बड़े-बड़े राष्ट्रों को सदा के लिए उड़ा दिया, परन्तु भारतवर्ष में आकर वह समुद्रतट के एक कोने से टकराकर लौट गयी। इसके पश्चात् के आक्रमणकारियों को भी सारे समाज ने एकमत से अपना शत्रु माना और उनसे देश को मुक्त करने के प्रयत्न स्थान-स्थान पर चलते रहे। यही नहीं, आज के युग में भी वही संस्कृति हमारे हृदय में जाग रही है। 'हिन्दू' शब्द का उच्चारण करने के साथ ही एक हिन्दू का दूसरे हिन्दू के रक्त के विन्दु-विन्दु से मानो तादात्म्य हो जाता है। इसी अखण्ड राष्ट्रीयता का आज हमें पुनः आह्वान करना होगा और सिंधु से ब्रह्मपुत्र तक एवं सेतुबंध से हिमाचल के सारे उपाङ्गों तक विस्तृत मातृभूमि को गौरव तथा स्वाभिमान प्राप्त कराने के लिए अपने त्यागपूर्ण एवं कर्मठ पूर्वजों के प्रयत्नों की परम्परा को अपनाना होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट : २

सिद्धान्त

प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर उसे सुदृढ़ एवं स्थायी बनाने का प्रयत्न करे तथा अपने नागरिकों को एक ऐसा शासन प्रदान करे जिसके अन्तर्गत वे अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए समृद्ध, सोद्देश्य एवं सुखी समाज के संगठन में सचेष्ट रह सकें। भारत की स्वतंत्रता के उपरान्त जनमन में यह सहज आकांक्षा जाग्रत हुई थी और यह अपेक्षा की गयी थी कि सदियों से परतन्त्र, अतः संघर्षरत राष्ट्र अब अपने स्वाभाविक स्वरूप एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त कर अपने घर का नव-निर्माण कर सकेगा, रूढ़ियाँ समाप्त होकर स्वस्थ चैतन्यमयी संस्थाएं जन्म लेंगी तथा आर्थिक दुर्व्यवस्था एवं सामाजिक अन्याय के पाटों में पिसने वाला जन-जीवन सम्पन्नता और समानता के वातावरण में संतोष की साँस ले सकेगा। बड़े-बड़े उद्घोषों और योजनाओं के बावजूद जनता की अपेक्षाएं पूर्ण नहीं हुईं। उल्टे अव्यवस्था और अनाचार, अभाव और असमानताएं, अरक्षा और असामाजिकता पहले से अधिक तीव्र और व्यापक हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद स्वतन्त्र्य के प्रथम उद्रेक में देशी राज्यों के विलीनीकरण, संविधान के निर्माण तथा अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण एवं अभिनवीकरण की दिशा में अवश्य उल्लेखनीय पग उठाये गये, किन्तु वह आवेश शीघ्र ही समाप्त हो गया; यहाँ तक कि परिवर्तन से उत्पन्न स्वाभाविक समस्याओं के समाधान एवं सामञ्जस्य के प्रयत्नों के स्थान पर हम उनसे अभिभूत हैं। राष्ट्र को सुनिश्चित और सुनियोजित दिशा में प्रगत करने के स्थान पर शासक और शासित विभ्रम और विरक्ति के शिकार बनकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो प्रवाहपतित-से चलते दिखाई देते हैं। अनास्था और आत्मविश्वासहीनता की यह अवस्था राष्ट्र के अस्तित्व और अस्मिता के लिए संकटपूर्ण एवं अशोभनीय है। इसे बदलकर देश के पुरुषार्थ को सचेत करना होगा।

वर्तमान दुरवस्था का कारण

वर्तमान परिस्थित का सबसे प्रमुख कारण राष्ट्र-जीवन के आत्मा का साक्षात्कार न करते हुए उसके ऊपर विदेशी और विजातीय विचारधाराओं और जीवन-मूल्यों को थोपने का प्रयत्न है। शीघ्र उन्नति की आतुरता में दूसरे देशों का अन्धानुकरण करने और 'स्व' के तिरस्कार की प्रवृत्ति पैदा हुई है। इससे राष्ट्र-मानस में कुण्ठा घर कर गयी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जनसंघ—एक ऐतिहासिक आवश्यकता

विश्व का ज्ञान हमारी थाती है। मानव-जाति का अनुभव हमारी संपत्ति है। विज्ञान किसी देश-विशेष की बपौती नहीं। वह हमारे भी अभ्युदय का साधन बनेगा। किंतु भारत हमारी रंगभूमि है। भारत की कोटि-कोटि जनता पात्र ही नहीं प्रेक्षक भी है, जिसके रंजन एवं आत्मसुख के लिए हमें सभी भूमिकाओं का निर्धारण करना है। विश्व-प्रगति के हम केवल द्रष्टा ही नहीं अपितु साधक भी हैं। अतः जहाँ एक ओर हमारी दृष्टि विश्व की उपलब्धियों पर हो, वहाँ दूसरी ओर हम अपने राष्ट्र की मूल प्रकृति, प्रतिभा एवं प्रवृत्ति को पहिचान कर अपनी परम्परा और परिस्थिति के अनुरूप भविष्य के विकासक्रम का निर्धारण करने की अनिवार्यता को भी न भूलें। 'स्व' के साक्षात्कार के बिना न तो स्वतंत्रता सार्थक हो सकती है और न वह कर्मचेतना ही जाग्रत हो सकती है जिसमें परावलम्बन और पराभूति का भाव न होकर स्वाधीनता, स्वेच्छा और स्वानुभवजनित सुख हो। अज्ञान, अभाव तथा अन्याय की परिसमाप्ति और सुदृढ़, समृद्ध, सुसंस्कृत एवं सुखी राष्ट्र-जीवन का शुभारम्भ सबके द्वारा स्वेच्छा से किये जाने वाले कठोर श्रम तथा सहयोग पर निर्भर है। यह महान् कार्य राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नये नेतृत्व की अपेक्षा रखता है। भारतीय जनसंघ का जन्म इसी अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए हुआ है।

उद्देश्य

भारतीय जनसंघ का उद्देश्य भारत को उसकी संस्कृति और मर्यादा के आधार पर एक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जनतन्त्र बनाना है जिसमें व्यक्ति को समान अवसर और स्वतन्त्रता प्राप्त हो तथा जो भारत को सुदृढ़ एवं सुसम्पन्न बनाते हुए उसे एक प्रगतिशील, आधुनिक और जागरूक राष्ट्र बनाये, जो दूसरों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना कर सके और विश्वशांति के स्थापनार्थ राष्ट्र-संघ में समुचित रीति से प्रभाव डाल सके।

भारतीय सांस्कृतिक अधिष्ठान की अपरिहार्यता

लोकतन्त्र, समानता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा विश्वशांति परस्पर सम्बद्ध कल्पनाऐं हैं। किन्तु पाश्चात्य राजनीति में इनमें अनेकदा टकराव आया है। समाजवाद और विश्वशासन के विचार भी इन समस्याओं के समाधान के प्रयत्न में से उत्पन्न हुए हैं, पर वे कुछ कर नहीं पाये। उल्टे उन्होंने मूल को धक्का लगाया है और नयी समस्याऐं पैदा की हैं। भारत का सांस्कृतिक चिंतन वह तात्त्विक अधिष्ठान प्रस्तुत करता है जिससे उपर्युक्त भावनाऐं समन्वित हो वांछनीय लक्ष्यों की सिद्धि कर सकें। इस अधिष्ठान के अभाव में मानव का चिन्तन और विकास अवरुद्ध हो गया है। भारतीय तात्त्विक सत्यों का ज्ञान देश और काल से स्वतंत्र है। यह ज्ञान केवल हमारी ही नहीं वरन् पूर्ण संसार की प्रगति की दिशा निश्चित करेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एकात्मवाद

भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है। सृष्टि की विभिन्न सत्ताओं तथा जीवन के विभिन्न अंगों के दृश्य भेद स्वीकार करते हुए वह उनके अन्तर में एकता की खोज कर उनमें समन्वय की स्थापना करती है। परस्पर विरोध और संघर्ष के स्थान पर वह परस्परावलम्बन, पूरकता, अनुकूलता और सहयोग के आधार पर सृष्टि की क्रियाओं का विचार करती है। वह एकांगी न होकर सर्वांगीण है। उसका दृष्टिकोण सांप्रदायिक अथवा वर्गवादी न होकर सर्वात्मवादी एवं सर्वोत्कर्षवादी है। एकात्मकता उसकी धुरी है।

व्यष्टि और समष्टि

व्यष्टि और समष्टि के बीच संघर्ष की कल्पना कर दोनों में से किसी एक को प्रमुख एवं सम्पूर्ण क्रियाओं का अन्तिम लक्ष्य मानकर पश्चिम में अनेक विचारसरणियों का जन्म हुआ है। किन्तु दृश्य व्यक्ति अदृश्य समष्टि का भी प्रतिनिधित्व करता है। 'अहं' के साथ 'वयं' की सत्ता भी प्रत्येक 'अहं' के द्वारा जीती (जीवन पाती) है। प्रत्येक 'इकाई'में समुदाय की प्रकृति परिलक्षित होती है। व्यक्ति ही समष्टि के उपकरण हैं, उसके ज्ञान-तन्तु हैं। व्यक्ति के विनाश या अविकास से समष्टि पंगु हो जायेगी। व्यक्ति ही समष्टि की पूर्णता का माध्यम और माप है। किन्तु व्यक्ति की साधना समष्टि की आराधना से भिन्न नहीं हो सकती। शरीर को क्षति पहुँचाकर कोई अंग कैसे सुखी हो सकता है? फूल के अस्तित्व पंखुड़ियों की शोभा तथा जीवन की सार्थकता पुष्प के साथ रहकर उसके स्वरूप को बनाने और निखारने में है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और समाजहित अविरोधी हैं।

व्यक्ति का सर्वांगीण विकास

व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में चारों का ध्यान रखना होगा। चारों की भूख मिटाये बिना व्यक्ति न तो सुख का अनुभव और न अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की उन्नति आवश्यक है। आजीविका के साधन, शान्ति, ज्ञान एवं तादात्म्य-भाव से ये भूखें मिटती हैं। सर्वांगीण विकास की कामना ही व्यक्ति हो समाजहित में कार्य की प्रेरणा देती है।

पुरुषार्थ चतुष्टय

व्यक्ति के विकास और समाज के हित का सम्पादन करने के उद्देश्य से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों की कल्पना की गयी है। धर्म, अर्थ और काम एक दूसरे के पूरक और पोषक हैं। मनुष्य की प्रेरणा का स्रोत तथा उसके कार्यों का मापक किसी एक को ही मानकर चलना अधूरा होगा। फिर भी धर्म अर्थ और काम की सिद्धि का साधन, अतः आधारभूत है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding:IKS-MoE-Grant-2

धर्म का स्वरूप

अनेकदा धर्म को मत या मजहब मानकर उसके गलत अर्थ लगाये जाते हैं। यह भूल अंग्रेजी के 'रिलीजन' शब्द का अनुवाद 'धर्म' करने के कारण हुई है। धर्म का वास्तविक अर्थ है वे सनातन नियम जिनके आधार पर किसी सत्ता की धारणा हो और जिनका पालन कर वह अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति कर सके। धर्म के मूल तत्त्व सनातन हैं, किन्तु उनका विवरण देश-काल-परिस्थिति के अनुसार बदलता है। इस संक्रमणशील जगत् में धर्म ही वह तत्त्व है जो स्थायित्व लाता है। इसीलिए धर्म को ही नियन्ता माना गया है। प्रभुता उसी में निहित है।

राष्ट्र की आत्मा चिति

समाज केवल व्यक्तियों का समूह अथवा समुच्चय नहीं अपितु एक जीवमान सावयव सत्ता है। भूमि-विशेष के प्रति मातृ-भाव रखकर चलने वाले समाज से राष्ट्र बनता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशेष प्रकृति होती है जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं अपितु जन्मजात है। इसे चिति कहते हैं। राष्ट्रों का उदयावपात 'चिति' के अनुकूल अथवा प्रतिकूल व्यवहार पर निर्भर रहता है। विभिन्न विशिष्टताओं वाले राष्ट्र परस्पर पूरक होकर मानव एकता का निर्माण कर सकते हैं। राष्ट्रों की प्रकृति मानव एकता की विरोधी नहीं, यदि कहीं उसके विरुद्ध आचरण दिखता है तो वह विकृति का द्योतक है। राष्ट्रों का विनाश कर मानव एकता उसी प्रकार असम्भव तथा अवांछनीय है जिस प्रकार व्यक्तियों को नष्ट कर समष्टि का अस्तित्व या विकास।

चिति के आविष्कार के उपकरण

समाज की चिति स्वयं को अभिव्यक्त करने तथा व्यक्तियों को विभिन्न पुरुषार्थों के सम्पादन की सुविधा प्राप्त कराने के लिए अनेक संस्थाओं को जन्म देती है। समाज में इनकी वही स्थिति है जो शरीर में विभिन्न अंगों की। जाति, वर्ण, पंचायत, सम्प्रदाय, संघ, पूग, विवाह, सम्पत्ति, राज्य आदि इसी प्रकार की संस्थाऐं हैं। राज्य महत्त्वपूर्ण है किन्तु सर्वोपरि नहीं।

राज्य की आवश्यकता

कृतयुग में जब मानव परस्पर धर्म के आधार पर एक दूसरे की रक्षा करते थे, राज्य नहीं था। किन्तु वह एक आदर्श स्थिति है और तभी सम्भव है जब प्रत्येक व्यक्ति पूर्णतः द्वंद्वातीत, निःस्वार्थ, निःस्पृह एवं धर्मनिष्ठ हो। सामान्यतः समाज में सुव्यवस्था बनाये रखने तथा प्रत्येक घटक को धर्मपालन की सुविधा देने के लिए राज्य एक आवश्यक संस्था है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदर्श राज्य-धर्मराज्य

भारतीय राज्य का आदर्श 'धर्मराज्य' रहा है। यह एक असाम्प्रदायिक राज्य है। सभी पन्थों और उपासना-पद्धतियों के प्रति सहिष्णुता एवं समादर का भाव भारतीय राज्य का आवश्यक गुण है। अपनी श्रद्धा और अंतःकरण की प्रवृत्ति के अनुसार प्रत्येक नागरिक का उपासना का अधिकार अक्षुण्ण है तथा राज्य के संचालन अथवा नीति-निर्देशन में किसी भी व्यक्ति के साथ मत या सम्प्रदाय के आधार पर भेदभाव नहीं हो सकता। धर्मराज्य 'थियोक्रेसी' अथवा मजहबी राज्य नहीं है।

'धर्मराज्य' किसी व्यक्ति अथवा संस्था को सर्वसत्तासम्पन्न नहीं मानता। सभी नियमों और कर्तव्यों से बंधे हुए हैं। कार्यपालिका, विधायिका और जनता, सबके अधिकार धर्माधीन हैं। स्वैराचरण कहीं भी अनुमत नहीं। अंग्रेजी का 'Rule of Law' (विधि के अनुसार शासन) धर्मराज्य की कल्पना को व्यक्त करने वाला निकटतम शब्द है। निरंकुश और अधिनायकवादी प्रवृत्तियों को रोकने तथा लोकतंत्र को स्वच्छन्दता में विकृत होने से बचाने में धर्मराज्य ही समर्थ है। राज्यों की अन्य कल्पनाएं अधिकारमूलक हैं, किन्तु धर्मराज्य कर्तव्यभाव-प्रधान है। फलतः इसमें अपने अधिकारों के हनन की आशंका, असीम अधिकार-प्राप्ति की लालसा, सीमित अधिकारों से असंतोष, अधिकारारूढ़ होने पर कर्तव्यों की उपेक्षा, अधिकारमद, विभिन्न अधिकारों के बीच संघर्ष, इन सबकें लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

कर्तव्य और अधिकार

'धर्मराज्य' में जनाधिकारों को समाप्त नहीं किया जा सकता। जनता का इन मूलभूत अधिकारों के प्रति जागरूक रहना कर्तव्य है। बिना इसके धर्मपालन सम्भव नहीं। 'अधिकार' वह उपादान है जिससे व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करने में सक्षम होकर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की तथा एक बड़ी सत्ता के अंगभूत होने की अनुभूति करता है। कर्तव्य और अधिकार उस त्रिकोण की दो भुजाएं हैं धर्म जिसका आधार है। सैनिक का अधिकार है कि उसे शस्त्र मिले। बिना उसके वह रक्षा के अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकता। शस्त्र की उपलब्धि और प्रयोग कब और कैसे हो, इसका नियमन धर्म से होता है।

लोकतन्त्र

लोकाधिकार की प्रतिष्ठा और लोक-कर्तव्य के निर्वाह का लोकतन्त्र एक साधन है। केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी लोकतन्त्र चाहिए। वास्तव में जनतन्त्र अविभाज्य है। किसी भी एक क्षेत्र में लोकतन्त्र का अभाव दूसरे क्षेत्र में लोकतन्त्र को नहीं पनपने देगा। सहिष्णुता, व्यक्ति की प्रतिष्ठा तथा समष्टि के साथ एकात्मता लोकतंत्र के प्राण हैं। बिना इन भावों के लोकतंत्र का बाहरी स्वरूप निष्प्राण एवं जड़ है। यदि चैतन्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्यमान है तो देश-काल-परिस्थिति से लोकतन्त्र के रूप में भेद हो सकता है।

अपने प्रतिनिधि शासक चुनने और चुने जाने का अधिकार राजनीतिक लोकतन्त्र का प्रमुख लक्षण है। आर्थिक लोकतन्त्र के लिए व्यवसाय और उपभोग की स्वतन्त्रता आवश्यक है। प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता से सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना होती है। इस बात का प्रयत्न करना होगा कि ये अधिकार एक दूसरे के पूरक एवं पोषक रहें, विरोधी एवं विनाशक नहीं।

स्वतंत्रता

स्वतंत्रता मानव और राष्ट्र की स्वाभाविक अकांक्षा है। पराधीनता में न सुख है न शांति। राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता भी चाहिए। शासन का व्यक्ति और समष्टि के प्राकृतिक हित में हस्तक्षेप न करना तथा सदैव उसके अनुकूल चलना राजनीतिक स्वतन्त्रता है। अर्थ के भाव-रूप अथवा अभाव-रूप से मनुष्य के हित में विघ्न न होना आर्थिक स्वतन्त्रता है। समाज का व्यक्ति के स्वाभाविक विकास में बाधक न होकर साधक होना ही सामाजिक स्वतन्त्रता है। इन स्वतन्त्रताओं के राष्ट्रगत हुए बिना वे व्यक्ति को प्राप्त नहीं हो सकतीं। राज्य के सब अंगों द्वारा अपने-अपने कर्तव्य का पालन करने से सबको स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।

लोकतन्त्र के समान स्वतन्त्रता भी अविभाज्य है। बिना शासनिक स्वतन्त्रता के अन्य दो स्वतन्त्रताएं हो नहीं सकतीं। बिना आर्थिक स्वतन्त्रता के मनुष्य को सामाजिक और कुछ अंशों में राजनीतिक स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती तथा बिना सामाजिक स्वतन्त्रता के अर्थ मनुष्य को भाव और अभाव दोनों रूप में परतन्त्र कर देता है।

अर्थायाम

शासन-तन्त्र के समान अर्थतन्त्र में भी अराजकता केवल कृतयुग की बात है, अर्थात् अहस्तक्षेप (Laissez faire) का सिद्धान्त इसी अवस्था में सर्वहितकारी रूप से चल सकता है अन्यथा नहीं। अतः अर्थ के उत्पादन, विनिमय एवं उपभोग को व्यवस्थित करने के लिए अर्थायाम आवश्यक है। इस हेतु अर्थ के क्षेत्र में भी अनेक संस्थाओं का जन्म होता है। राज्य का भी इस विषय में महत्त्वपूर्ण दायित्व है। किन्तु सभी उद्योगों अथवा उत्पादन के साधनों का राज्य के स्वामित्व तथा प्रबन्ध के अधीन होना आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीकरण को जन्म देता है। अतः यह ठीक नहीं। पर यह भी स्वीकार करना होगा कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया के आरम्भ के लिए, अर्थव्यवस्था में अनुशासन बनाये रखने के लिए तथा राष्ट्र के आधारभूत लक्ष्यों की सिद्धि के लिए राज्य का कर्तव्य है कि वह आर्थिक क्षेत्र में नियोजन, निर्देशन, नियमन, नियंत्रण का सामान्यतः तथा विशेष क्षेत्रों और स्थितियों में स्वामित्व और प्रबन्ध का दायित्व ले।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थ का अभाव और प्रभाव

अर्थ के अभाव से तो धर्म का ह्रास होता ही है; अर्थ का प्रभाव भी धर्म की हानि करता है। अर्थ के अभाव और प्रभाव दोनों से ही आर्थिक स्वतंत्रता का हनन होता है। सुसाध्य आजीविका की अप्राप्ति तथा उत्पादन को बनाये रखने अथवा बढ़ाने के लिए आवश्यक पूँजी की कमी अर्थ का अभाव है। यह बात व्यक्ति और राष्ट्र दोनों पर लागू होती है। अर्थ की साधनता को भुलाकर उसमें आसक्ति, अर्थ से धर्मानुकूल कामोपभोग की इच्छा का, ज्ञान का और शक्ति का अभाव, अर्थ का अनुचित गौरव, समाज में आर्थिक विषमता, मुद्रा का आधिक्य एवं अवमूल्यन वे कारण हैं जिनसे अर्थ का प्रभाव उत्पन्न होता है। अर्थ का प्रभाव मानव की कर्म-शक्ति को कुण्ठित कर अर्थ और श्री के ह्रास का कारण बनता है।

सम्पत्ति का स्वामित्व

सम्पत्ति के स्वामित्व का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। कुछ लोग सम्पत्ति पर व्यक्ति का निर्बाध अधिकार मानते हैं। दूसरी ओर वे लोग हैं जो निजी सम्पत्ति को, विशेषकर उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व को, सभी बुराइयों की जड़ मानते हैं। ''ईशावास्यमिदं सर्वं'' के आधार पर कुछ तत्त्वज्ञ सम्पूर्ण सम्पत्ति को ईश्वर की मानकर मनुष्य को 'विश्वस्त' के नाते उसका व्यवहार करने का परामर्श देते हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से 'विश्वस्त' का विचार अच्छा है। किन्तु व्यवहार में 'विश्वस्त' को न्यास के किन नियमों और निर्देशों से बांधा जाय और कौन बांधे, यह प्रश्न तो बना ही रहता है।

व्यक्ति या व्यक्तियों का ऐसा समूह, जिसके साथ व्यक्ति जीवन के सभी प्रमुख व्यवहारों तथा आवश्यकताओं के लिए निगड़ित है, बिना सम्पत्ति के नहीं रह सकता। कर्म के साथ कर्मफल जुड़ा है। अर्जित के उपभोग एवं उपयोग की स्वतंत्रता में से सम्पत्ति पैदा होती है। सम्पूर्ण आय का उपभोग न कर बचत करना एक स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा राष्ट्रीय गुण है। सम्पत्ति में भी मानव को प्रतिष्ठा, सुरक्षा तथा तुष्टि की अनुभूति होती है। अतः हम संपत्ति को पूरी तरह नहीं मिटा सकते।

संपत्ति का आधार समाज-सापेक्ष है। सब वस्तुओं के लिए एक-सी संपत्ति-व्यवस्था नहीं है। एक ही वस्तु के लिए सब स्थानों पर और सब समय के लिए एक व्यवस्था नहीं है। यह विभेद समाज की आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित हुआ है। जो लोग समाज को संपत्ति का नियंता नहीं मानते वे केवल इतना चाहते हैं कि समाज विद्यमान मान्यताओं में परिवर्तन न करे। समाज को इस बात का अधिकार है तथा अेनक बार उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह संपत्ति सम्बन्धी मान्यताओं में फर्क करे। संपत्ति का अबाध एवं अपरिवर्तनीय अधिकार जैसी कोई चीज नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संपत्ति का अधिकार हमें मर्यादाओं के अंतर्गत स्वीकार करना होगा। इन सीमाओं का निर्धारण समाज की तथा व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं जीवन-मूल्यों के आधार पर निश्चित होना चाहए। जब संपत्ति अपने प्रभाव से स्वामी को आलसी या विलासी और दूसरों को अभावग्रस्त या परतंत्र बनाये तो उसका नियमन आवश्यक है।

संपत्ति सम्बन्धी अधिकारों में परिवर्तन होने पर प्रभावित व्यक्ति के पुनर्वास का दायित्व मूलतः समाज पर आता है। किन्तु क्षतिपूर्ति का सिद्धांत नैश्चिन्त्य तथा स्थायित्व की दृष्टि से आवश्यक है।

अर्थव्यवस्था की कसौटी

राज्य-व्यवस्था की भांति अर्थव्यवस्था का निकष भी मानव का सर्वतोमुखी विकास होना चाहिए। मानव का सुख ही अर्थोत्पादन का प्रमुख लक्ष्य है तथा मानव-शक्ति उसका प्रधान साधन है। प्रकृति के साधनों का उपयोग कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास ही मानव की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य रहा है। जो इस उद्देश्य की सफल पूर्ति के साथ-साथ मानव के सर्वांगीण विकास में सहायक हो सके, वही उपयुक्त व्यवस्था है। जिस व्यवस्था में आर्थिक क्षमता तो बढ़े किन्तु मानवता के अन्य अंगों की विकास की शक्ति कुंठित हो जाय, वह कल्याणकारी नहीं हो सकती। मानव ही हमारी व्यवस्था का केन्द्र होना चाहिए।

सम्पूर्ण मानव का विचार न कर केवल एक अर्थपरायण मानव को सभी कृतियों का केन्द्र बनाकर विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अधूरी है। अधिकतम लाभ की स्थायी आकांक्षा इस व्यवस्था की प्रेरक तथा प्रतिस्पर्धा नियामक शक्ति है। ये भाव भारतीय जीवन-दर्शन से बेमेल हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं की प्रतिक्रिया में कल्पित समाजवाद, उसके उद्देश्य श्लाघ्य होने के उपरांत भी, परिणाम में मानव-हितकारी सिद्ध नहीं हुआ। कारण, वैज्ञानिक समाजवाद के उद्गाता कार्ल मार्क्स का व्यक्ति और समाज का विश्लेषण मूलतः भौतिकवादी और इसलिए अधूरा है। वर्ग-संघर्ष की भूमिका में से स्वेच्छया स्थायी सहयोग की भावना पैदा नहीं हो सकती।

पूँजीवादी और समाजवादी दोनों व्यवस्थाओं में पूँजी के स्वामित्व के विषय में मतभेद है, किन्तु दोनों की परिणति केन्द्रीकरण तथा एकाधिपत्य में होती है। फलतः दोनों मानव की उपेक्षा करती हैं। हमें ऐसी अर्थव्यवस्था चाहिए जिसमें व्यक्ति की अपनी प्रेरणा बनी रहे तथा वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अपने संबंधों में मानवता का विकास कर सके। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था ही इस लक्ष्य को सिद्ध कर सकती है।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था

शक्ति का केन्द्रीयकरण लोकतन्त्र एवं मानव-स्वतंत्रता के अनुकूल नहीं है। राष्ट्रीय एकात्मकता के अधीन राजनीतिक एवं आर्थिक शक्तियों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भौगोलिक एवं व्यवसायात्मक दोनों ही दृष्टियों से विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। पाश्चात्य देशों में औद्योगीकरण की जो ऐतिहासिक प्रक्रिया रही है उससे शक्तियों का केन्द्रीयकरण हुआ है। सीमित समवाय, प्रबंध अधिकरण तथा सूत्रधारी समवाय आदि की कानूनी व्यवस्थाओं ने इसका पोषण किया है। पूँजीवादी व्यवस्था के अनेक दोष केन्द्रीयकरण की देन हैं। समाजवाद की व्यवस्था ने केन्द्रीयकरण को रोकने की कोई चेष्टा नहीं की। उसने व्यक्तियों के हाथों से पूँजी के स्वामित्व को छीनकर राज्य के हाथों में सौंपने मात्र से संतोष कर लिया। किन्तु इससे राजनीतिक और आर्थिक दोनों शक्तियों के एक स्थान पर एकत्र आने के कारण केन्द्रीयकरण तथा उसके दोषों में और अधिक वृद्धि हुई है। रोग का इलाज विकेन्द्रीकरण से ही सम्भव है। आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं का इस उद्देश्य से पुनर्निर्धारण करना होगा। विज्ञान की आधुनिकतम खोजें और प्रौद्योगिकी विकेन्द्रित उद्योगों के पक्ष में हैं। मानव-व्यक्तित्व को बनाये रखने और उसके सर्वतोमुखी विकास की इस व्यवस्था में सर्वाधिक सुविधा है। निजी या सहकारी स्वामित्व में छोटे यंत्रचालित उद्योग, छोटा व्यापार और कृषि हमारी अर्थव्यवस्था के मूल आधार हों। बड़े उद्योगों का विचार अपवाद रूप में ही किया जाय।

प्रगति के मानदंड

जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति के भरण-पोषण की, उसके शिक्षण की जिससे वह समाज के एक जिम्मेदार घटक के नाते अपना योगदान करते हुए अपने विकास में समर्थ हो सके, उसके लिए स्वस्थ एवं क्षमता की अवस्था में जीविकोपार्जन की, और यदि किसी भी कारण वह संभव न हो तो भरण-पोषण की तथा उचित अवकाश की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी समाज की है। प्रत्येक सभ्य समाज इसका किसी न किसी रूप में निर्वाह करता है। प्रगति के यही मुख्य मानदण्ड हैं। अतः न्यूनतम जीवन-स्तर की गारंटी, शिक्षा, जीविकोपार्जन के लिए रोजगार, सामाजिक सुरक्षा और कल्याण को हमें मूलभूत अधिकार के रूप में स्वीकार करना होगा।

एकात्म मानववाद

हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र मानव होना चाहिए जो 'यत् पिण्डे तद्ब्रह्मांडे' के न्याय के अनुसार समष्टि का जीवमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन हैं, साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में भिन्नरुचिलोक का विचार केवल एक औसत मानव से अथवा शरीर-मन-बुद्धि-आत्मायुक्त अनेक एषणाओं से प्रेरित पुरुषार्थचतुष्टयशील, पूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का ही विचार किया जाय वह अधूरी है। हमारा आधार एकात्म मानव है जो अनेक एकात्म समष्टियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद (Integral

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Humanism) के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा।

आह्वान

भारत के अधिकांश राजनीतिक दल पाश्चात्य विचारों को लेकर ही चलते हैं। वे वहाँ की किसी न किसी राजनीतिक विचारधारा से संबद्ध एवं वहाँ के दलों की अनुकृति मात्र हैं। वे भारत की मनीषा को पूर्ण नहीं कर सकते और न चौराहे पर खड़े विश्वमानव का मार्गदर्शन कर सकते हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा लेकर चलने वाले भी कुछ राजनीतिक दल हैं। किन्तु वे भारतीय संस्कृति की सनातनता को उसकी गतिहीनता समझ बैठे हैं और इसलिए बीते युग की रूढ़ियों अथवा यथास्थिति का समर्थन करते हैं। संस्कृति के क्रांतिकारी तत्त्व की ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती। वास्तव में समाज में प्रचलित अनेक कुरीतियाँ, जैसे—छुआछूत, जाति-भेद, दहेज, मृत्युभोज, नारी-अवमानना आदि भारतीय संस्कृति और समाज के स्वास्थ्य की सूचक नहीं बल्कि रोग के लक्षण हैं। भारत के अनेक महापुरुष, जिनकी भारतीय परम्परा और संस्कृति के प्रति अनन्य निष्ठा थी, इन बुराइयों के विरुद्ध लड़े। आज के अनेक आर्थिक और सामाजिक विधानों की हम जाँच करें तो पता चलेगा कि वे हमारी सांस्कृतिक चेतना के क्षीण होने के कारण युगानुकूल परिवर्तन और परिवर्द्धन की कमी से बनी हुई रूढ़ियाँ, परकीयों के साथ संघर्ष की परिस्थिति से उत्पन्न माँग को पूरा करने के लिए अपनाये गये उपाय अथवा परकीयों द्वारा थोपी गयी या उनका अनुकरण कर स्वीकार की गयी व्यवस्थाऐं मात्र हैं। भारतीय संस्कृति के नाम पर उन्हें जिन्दा नहीं रखा जा सकता।

एकात्म मानव विचार भारतीय और भारतबाह्य सभी चिंताधाराओं का सम्यक् आकलन करके चलता है। उनकी शक्ति और दुर्बलताओं को भी परखता है और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है जो मानव को अब तक के उसके चिंतन, अनुभव और उपलब्धि की मंजिल से आगे बढ़ा सके।

पाश्चात्य जगत् ने भौतिक उन्नति तो की, किन्तु उसकी आध्यात्मिक अनुभूति पिछड़ गयी। भारत भौतिक दृष्टि से पिछड़ गया और इसलिए उसकी आध्यात्मिकता शब्दमात्र रह गयी। 'नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्य:'—अशक्त आत्मानुभूति नहीं कर सकता। बिना अभ्युदय के नि:श्रेयस की सिद्धि नहीं होती। अत: आवश्यक है कि 'बलमुपास्व' के आदेश के अनुसार हम बल-संवर्धन करें, अभ्युदय के लिए प्रयत्नशील हों, जिससे अपने रोगों को दूर कर स्वास्थ्यलाभ कर सकें तथा विश्व के लिए भार न बनकर उसकी प्रगति में साधक और सहायक हो सकें।

('सिद्धान्त और नीति' से)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट : ३

आपका मत

चुनाव आयोग ने आगामी चुनाव का कार्यक्रम घेषित किया है। विविध दलों ने अपने प्रत्याशियों के नामों की सूची भी तैयार कर ली है। प्रत्याशी (उम्मीदवार) निश्चित करते समय कांग्रेस जैसे पुराने दल के सामने दल में कार्यरत छोटे-बड़े गुटों एवं जाति-बिरादरियों की अपेक्षाओं तथा माँगों का विचार करते हुए प्रत्याशियों का चयन करने की समस्या थी। अपेक्षाकृत नये राजनीतिक दलों को केवल इतना ही विचार करना था कि ऐसे सुयोग्य प्रत्याशियों को ढूँढें जो दल के चुनाव चिह्न पर चुनाव लड़ सकें। आप 'सुयोग्य प्रत्याशी' शब्द की व्याख्या भले ही न करें, मतदाता तो उन्हें ठीक से पहिचान लेता ही है। तथापि देश में विद्यमान राजनीतिक स्थिति तथा राजनीतिक दलों का यथार्थ मूल्यमापन करने की दृष्टि से सुयोग्य प्रत्याशियों के किन्हीं गुणविशेषों की चर्चा करना समीचीन होगा।

अच्छा प्रत्याशी

सामान्यत: माना जा सकता है कि वह प्रत्याशी (उम्मीदवार) एक अच्छा प्रत्याशी है जो अपने दल की रीति-नीतियों का विधानमण्डलों या संसद् में योग्य प्रतिनिधित्व एवं अपने निर्वाचन-क्षेत्र की ठीक से देखभाल कर सकता है और जो अपने मतदाताओं का मनोगत भली भांति व्यक्त कर सकता है। व्यक्तिगत दृष्टि से उसे जनता के प्रति एकनिष्ठ रहना चाहिए। दल के सदस्य के रूप में उसे अपने दल की रीति-नीतियों के प्रति एकनिष्ठ होना चाहिए तथा दल के अनुशासन का पालन करना चाहिए। ऐसे प्रत्याशी में इसके अतिरिक्त और भी कुछ गुणविशेष हों, तो सोने में सुहागा। किन्तु सुयोग्य प्रत्याशी के इन प्रमुख निकषों का विकल्प या पर्याय वे नहीं हो सकते।

हमारे देश में शायद ही कोई राजनीतिक दल होगा जो अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय इन सभी पहलुओं को ध्यान में लेता हो। प्रमुख एवं एकमेव निकष यही होता है कि उम्मीदवार शर्तिया जीतने वाला हो। घुड़दौड़ का खेल (रेस) खेलने वालों को किसी विशेष घोड़े से कोई प्रेम नहीं होता। जिस घोड़े की 'विन' में आने की सर्वाधिक संभावना होता है, उसी पर वे पैसे लगाया करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ ऐसा ही विचार यहाँ भी होता पाया जाता है। किन्तु वे यह बात भुला देते हैं कि 'रेस' समाप्त होने के बाद जीतने वाले घोड़े का पैसे लगाने वालों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा करता। प्रत्याशियों के बारे में ऐसी बात नहीं है। विधानमण्डलों और निर्वाचन-क्षेत्रों में राजनीतिक दलों को इस प्रत्याशी के द्वारा ही अपना कार्य करना-कराना होता है।

आजकल प्रत्याशी निश्चित करते समय उसकी जाति-बिरादरी को बहुत महत्त्व प्राप्त हो गया है। इस पाप का सबसे बड़ा धनी कांग्रेस दल है। अन्य दल भी इस विषय में दूध के धोये नहीं हैं। सुदृढ़ संगठन के अभाव के कारण ही ऐसा होता है। किन्तु जातिवाद या बिरादरीवाद की निरंतर आलोचना करते रहने से हम परोक्ष रूप से उसे बढ़ावा ही देते हैं। हमारे यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी जाति या बिरादरी का घटक होता ही है। अत: अन्य दलों पर कुनबापरस्ती का आरोप करते रहने से हम उर्वरित समाज में सुप्तावस्था में विद्यमान इन्हीं प्रवृत्तियों को ललचाते रहते हैं। पिछले चुनाव का अनुभव बताता है कि उन प्रत्याशियों ने, जिन्होंने जाति-बिरादरी के नाम पर वोट माँगे थे, अन्य जातियों के सामूहिक रोष को ही बुलावा दिया। परिणामत: ऐसे प्रत्याशी हार गये। चुनाव लड़ने के लिए आवश्यक सारी पात्रता प्रत्याशी में हो, तो उसकी जाति-बिरादरी का विचार करने का कोई कारण ही नहीं है। ऐसा तो कोई प्रत्याशी हो ही नहीं सकता जिसकी अपनी कोई जाति या बिरादरी ही न हो। कम से कम हमारे देश में तो ऐसा हो नहीं सकता। किन्तु राममनोहर लोहिया जैसे नेता को भी अपने निर्वाचन-क्षेत्र में वर्चस्व रखने वाली बहुसंख्य बिरादरी का न होने के कारण अपनी उम्मीदवारी छोड़कर चुनाव से हट जाना पड़ता है तो बात बहुत गंभीर मानी जानी चाहिए। जातपाँत के नाम पर 'वोट' मांगने की अपेक्षा दल का संगठन सुदृढ़ बनाना ही इसका उपाय है।

इस बात का भी कि प्रत्याशी की चुनाव में पैसा कितना खर्च कर सकने की शक्ति और तैयारी है, उसका चयन करने पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अनेकों को केवल यही सोचकर टिकट दिया जाता है कि उनके पास चुनाव में भरपूर पैसा लगाने की क्षमता है। ऐसे लोग मतदाताओं के पास उनका 'मत' मांगने नहीं, प्रत्युत् 'वोट' खरीदने के लिए जाते हैं। उनके पास पर्याप्त पैसा होता है। जैसे भी हो, संसद् में प्रवेश करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य होता है। उनकी दृष्टि में तो यह एक सीधा-सीधा सौदा होता है। राजनीतिक दलों के पास—और कांग्रेस भी इसके लिए कोई अपवाद नहीं है— धन की इतनी कमी होती है कि सत्ता और कीर्ति के लालची इन लक्ष्मीपुत्रों को टिकट देने के लिए वे सहर्ष तैयार हो जाते हैं।

इन सब बातों के कारण देश की राजनीति के मार्ग से भटक जाने की संभावना होती है। इस प्रवृत्ति को रोका न गया, तो विधानमण्डलों मे छोटे-बड़े दबाव-गुटों का प्रभाव बढ़ जायेगा और किसी समस्या पर केवल जनकल्याण और राष्ट्रहित की कसौटी पर कोई निर्णय ले पाना प्राय: असंभव हो जायेगा। अत: अस्थायी लाभ के लिए अपने सिद्धान्तों की बलि चढ़ाने के मोह से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजनीतिक दलों को बचना चाहिए। विचारपूर्वक एवं आँखें खुली रखकर मतदान करना मतदाताओं का कर्तव्य है। इस कर्तव्य का पालन वे सही-सही करते हैं, तो वे राजनीतिक दलों को ठीक मार्ग पर ला सकेंगे।

चुनाव के अखाड़े में अनेक प्रत्याशी उतरते हैं। मतदाताओं को इनमें से एक को चुनना होता है। अपना निर्णय सभी दृष्टियों से उचित रहे, इस हेतु मतदाता को कई बातों का विचार करना पड़ता है। इस प्रपरिप्रेक्ष्य में प्रत्याशी, उसका दल, और उस दल की नीतिरीतियाँ आदि सभी बातें महत्त्वपूर्ण होती हैं। प्रत्याशी स्वयं अच्छा न हो, तो उसके दल के अच्छा होने मात्र से वह चुन कर आने के लिए योग्य नहीं हो जाता। दल के नेताओं ने पक्षपात करते हुए उसे टिकट दिया हो अथवा उनका उद्देश्य अच्छा होते हुए भी उनके चयन में कोई दोष रह गया हो, तो उनकी गलती को सुधारना मतदाताओं का कर्तव्य हो जाता है।

एक समय था कि कांग्रेस के चुनाव-चिह्न पर लोग सड़क के किनारे खड़े बत्ती के खम्भे (लैम्प पोस्ट) को भी मत दे देते थे। पहले आम चुनाव में आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी आदि वरिष्ठ नेताओं को कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ रहे उनकी तुलना में नितान्त साधारण प्रत्याशियों ने हरा दिया था। अब वह समय बीत चुका है। किन्तु अब दोलक बिल्कुल दूसरे छोर पर पहुँच गया है। एक महाशय ने हाल ही में कहा है कि कांग्रेस के प्रत्याशी को मत देने की अपेक्षा तो मैं सड़क पर लगे मील के पत्थर को अपना वोट देना पसंद करूंगा। किन्तु हमें ध्यान में रखना चाहिए कि कांग्रेस में आस्था होने के कारण सड़क पर खड़े खम्भे को मत देना और कांग्रेस से ऊब जाने के कारण मील के पत्थर को अपना मत देने की वरीयता प्रकट करना,दोनों बातें अनुचित हैं। ये दोनों ही स्थितियाँ विकृत मानसिकता के लक्षण हैं।

अच्छा दल

मतदाता चाहते हैं कि प्रत्याशी अच्छा हो। किन्तु प्रत्याशी अच्छा हो और उसका दल बुरा हो, तो वह अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन का उदाहरण इस सन्दर्भ में पर्याप्त मुखर है। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्याशी और उसका दल दोनों अच्छे हों।

अब अच्छा दल किसे कहा जा सकता है? केवल व्यक्तियों के जमघट के कारण कोई दल अच्छा नहीं हो जाता। केवल सत्ता प्राप्त करने के लिए नहीं, अपितु विशिष्ट ध्येय की पूर्ति के लिए जन्मे और कार्य कर रहे सुसंगठित दल को अच्छा दल कहा जा सकता है। ऐसा दल राजनीतिक सत्ता को साध्य नहीं, साधन मानता है। दल के सर्वश्रेष्ठ पदाधिकारियों से लेकर सामान्य कार्यकर्ताओं तक उसका प्रत्येक सदस्य ध्येयनिष्ठ होना चाहिए। ऐसी ध्येयनिष्ठा से ही समर्पण की भावना और अनुशासन का निर्माण होता है। किन्हीं विधिनिषेधों को केवल बाह्य रूप से स्वीकार करने को अनुशासन नहीं कहा जा सकता। जितनी मात्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में अनुशासन ऊपर से लादा जाता है, उतनी मात्रा में दल की आंतरिक शक्ति क्षीण होती जायेगी। समाज के लिए धर्म का जितना महत्त्व है, उतना ही महत्त्व दल के लिए अनुशासन का होता है।

दल में ध्येयनिष्ठा और अनुशासन हो, तो गुटबाजी के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा। अपने संकीर्ण स्वार्थ से दल का हित जब गौण प्रतीत होने लगता है, तब गुटबाजी प्रारंभ हो जाती है। गुटबाजी अहंवादी एवं विकृत मानसिकता की सामाजिक अभिव्यक्ति होती है। गुटबाजी से खोखला बना दल कभी प्रभावकारी नहीं हो सकता, न ही वह कोई ठोस कार्य कर पाता है।

अच्छे दल का तीसरा विशेष गुण यह है कि उसे किसी विशिष्ट ध्येय के लिए समर्पित होना चाहिए, उसके प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। उसकी सारी नीतियाँ ऐसी होनी चाहिए कि उस ध्येय को साकार करने के लिए ही बनायी गयी हों। राजकाज में यह संभव नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति ध्येयनीति की परिधि के अन्दर शतप्रतिशत फिट हो। कभी-कभी प्रश्न का विचार वस्तुनिष्ठ व्यावहारिक दृष्टि से करना पड़ता है। किन्तु व्यावहारिकता के नाम पर अवसरवादिता को स्थान नहीं मिलना चाहिए। वस्तुनिष्ठता तत्त्वनिष्ठ आदर्शवादी लोगों का गुण होता है, नीति-अनीति का कतई कोई विचार न करने वाले अवसरवादी और काइयाँ लोगों का नहीं। राजनीतिक दल और दलों के नेता अपने आचरण से राजनीतिक जीवनमूल्यों को प्रस्थापित करते हैं। वे इस संबंध में आवश्यक मापदंडों का भी निर्माण करते हैं। इसीलिए राजनीतिक दलों को चाहिए कि सामाजिक जीवन के संकेतों को किसी भी परिस्थिति में भंग न करें। लोकतंत्र केवल चुनावों का नाम नहीं है। उसके लिए तो सुसंगठित समाज, सुसंगठित दल एवं राजनीतिक आचरण के नीतिनियमों और संकेतों का सुस्थापित होना नितान्त आवश्यक होता है।

अच्छा कार्यक्रम

तथापि अच्छा दल और उसका अच्छा प्रत्याशी ही पर्याप्त नहीं हैं। उस दल के पास अच्छा और व्यावहारिक कार्यक्रम भी होना आवश्यक है, क्योंकि दल को अन्त में अपने कार्यक्रम का ही क्रियान्वयन करना होता है। प्रत्याशी अच्छे हों, किन्तु दल का कार्यक्रम अच्छा तथा व्यावहारिक न हो, तो ऐसा दल जनता की शिकायतों को दूर नहीं कर पायेगा। उलटे उसमें से कुछ नयी समस्याएं ही खड़ी हो जायेंगी। इसीलिए आवश्यक होता है कि आदर्श प्रत्याशी, आदर्श दल और उनका आदर्श कार्यक्रम, तीनों बातों का एकत्रित विचार किया जाये। यह नहीं कि ये तीनों बातें सदैव इकट्ठी मिल ही जायेंगी। किन्तु इसका विचार तो निश्चय ही किया जा सकता है कि ये तीनों बातें अधिकतम मात्रा में इकट्ठी कहाँ और कैसे मिल सकेंगी।

('पोलिटिकल डायरी' से)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट : ४

कालीकत अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण

प्रतिनिधि साथियो,

इस वर्ष आपने मुझे प्रधान के नाते कार्यभार सौंपा है। हमारा दल कार्यकर्ताओं का संघटन है। प्रत्येक कार्यकर्ता समान भाव से अधिकाधिक जिम्मेदारी और अहमहमिकावृत्ति से काम में जुटा है। इस एकजुट एवं वर्धमान संघटन की संवैधानिक आवश्यकता की पूर्ति में आपने मेरे प्रति जो विश्वास प्रकट कर मुझे गौरव प्रदान किया है वह आपके हृदय की विशालता और स्नेहशीलता का परिचायक है। इस पूँजी के सहारे ही मैं पिछले पन्द्रह वर्षों से महामंत्री के नाते काम करता रहा। आगे भी यही मेरा सम्बल रहेगा।

संक्रमण की वेला

आज हम दो युगों की सन्धिवेला में भगवान परशुराम की तपोभूमि केरल में मिल रहे हैं। विगत अर्धशताब्दी में देश के मन और मस्तिष्क पर कांग्रेस तथा उसकी विचारधारा का प्रभाव रहा। उसके नेता राष्ट्र की नीति के ही नहीं उसके जीवन-मूल्यों के भी नियामक रहे। स्वराज्य के बाद शासन के सूत्र भी उन्हीं के हाथों में आये। उन्होंने जो कुछ किया उसका लेखा-जोखा लेने का यह अवसर नहीं है। इतना अवश्य कहना होगा कि सामान्य जन में राजनीतिक चेतना का जागरण इस युग की सबसे बड़ी देन है। यदि इस चेतना को तात्कालिक राजनीति की भूलभुलैया से बचाकर एक भावात्मक राष्ट्रीय अधिष्ठान पर सृजन का साधन बनाया जाता तो हम और आगे बढ़ गये होते तथा आज की अनेक समस्याओं से मुक्त रहते। हमें इस चेतना को भावात्मक रूप देकर ही नये युग का निर्माण करना है। किन्तु देश में ऐसे अनेक लोग हैं जो या तो बीते युग से ही जकड़े हैं या राष्ट्रमानस से अनभिज्ञ अथवा उसके प्रति असहानुभूतिपूर्ण एवं अश्रद्धालु होने के कारण विदेशीपन से प्रभावित एवं व्यामूढ़ हैं। फलतः युग-परिवर्तन सहज न होकर संघर्षपूर्ण हो गया है। हमें सभी विद्यमान समस्याओं का विश्लेषण इस पार्श्वभूमि में करते हुए देश और काल के अनुसार अपनी नीति निर्धारित करनी होगी।

विकल्प की खोज

इस युग-संक्रमण का संकेत अगस्त-सितम्बर १९६५ में ही मिल गया था जब भारत की वीरवाहिनियों ने पाकिस्तानी आक्रमण के विरुद्ध अपने पराक्रम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवं विजिगीषा का परिचय दिया। किन्तु कांग्रेस शासन ने जो नीतियाँ बाद में अपनायीं उनसे यह सिद्ध हो गया कि उसमें नये युग का साधन बनने का सामर्थ्य नहीं रहा। फलतः जनता आतुरता के साथ मुक्ति की कामना करने लगी। चतुर्थ आम चुनावों में अनेक प्रान्तों में कांग्रेस का पराभव इस प्रक्रिया का श्रीगणेश है। यदि गैरकांग्रेसी दल अधिक मजबूत होते तो परिणाम और भी अच्छा रहता। अन्य सभी गैर-कांग्रेसी दलों की तुलना में जनसंघ की अधिक उपलब्धियाँ महत्त्वपूर्ण हैं, पर परिस्थिति की मांग के मुकाबले समाधानकारक नहीं। हाँ, इतना अवश्य सिद्ध हो गया है कि जनसंघ में एक विकल्प के रूप में विकसित होने के बीज विद्यमान हैं। चुनाव के बाद तेजी से बढ़ता हुआ जनसहयोग और संघटन का विस्तार इसी विश्वास का परिणाम है।

समस्याओं का स्वरूप

चुनाव के बाद तीन प्रकार की समस्याऐं सामने आयी हैं। प्रथम तो वे प्रश्न हैं जिनका सम्बन्ध संक्रमण-काल की राजनीति से है। विभिन्न दलों के बीच जोड़-तोड़, मंत्रिमंडलों की अस्थिरता, दल-परिवर्तन आदि के प्रश्न इस कक्षा में आते हैं। दूसरी श्रेणी में वे प्रश्न आते हैं जिनके बीज भारत के संवैधानिक ढाँचे में होते हुए भी जो पिछले वर्षों में उभरे नहीं थे अथवा उनका वर्तमान गंभीर रूप प्रकट नहीं हुआ था। केन्द्र और प्रान्तों के सम्बन्ध तथा अन्तरप्रान्तीय समस्याएं इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। तीसरे वर्ग में देश की अर्थव्यवस्था, गृह, सुरक्षा तथा विदेश-नीति सम्बन्धी प्रश्न हैं जो कांग्रेस शासन की गलत एवं अयथार्थवादी नीतियों के कारण आज काफी गंभीर बन गये हैं। सामयिक होने के कारण पहली श्रेणी के प्रश्नों की यद्यपि विशेष चर्चा हो रही है, फिर भी वे महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पर दूसरी और तीसरी श्रेणी के प्रश्न ऐसे हैं जिनकी ओर ठीक ध्यान नहीं दिया गया तो देश की एकता और हितों को भारी खतरा पैदा हो सकता है।

राज्यपालों का व्यवहार

आम चुनावों के बाद दिल्ली और मद्रास को छोड़कर अन्य प्रान्तों में किसी भी एक दल के बहुमत में न आने के कारण पहला प्रश्न सरकार बनाने का था। जहाँ एक ओर गैर-कांग्रेसी दलों ने जनभावना का समादर करते हुए तथा परिस्थिति और प्रजातंत्रीय मांग को समझकर पंजाब, बिहार, पश्चिम बंगाल और केरल में मिले-जुले मंत्रिमंडल बनाये, वहाँ दूसरी ओर राजस्थान और उत्तरप्रदेश में कांग्रेस ने जनक्षोभ के बावजूद, राज्यपालों के सहारे सत्ता हथियायी। उत्तरप्रदेश में तो वह सत्ता टिकाये नहीं रख पायी, किन्तु राजस्थान में उसने अनेक भ्रष्ट उपायों से बहुमत काफी बढ़ा लिया है। मिश्र-मंत्रिमंडल के पतन के समय मध्यप्रदेश में और हाल में पश्चिम बंगाल, हरियाणा और पंजाब में राज्यपालों ने जिस मनमाने ढंग से आचरण किया है उससे इस पद की प्रतिष्ठा को तथा संविधान को भारी आघात पहुँचा है। जब राज्यपाल केन्द्र के प्रतिनिधि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं तो केन्द्र-शासन को उनके व्यवहार की पूरी जिम्मेदारी संभालनी चाहिए। इस जिम्मेदारी से भागने का अर्थ यही है कि केन्द्र के नेताओं के मन में पाप है तथा वे टट्टी की ओट में शिकार खेलना चाहते हैं। इस अवसर पर कुछ क्षेत्रों में चुने हुए राज्यपालों की मांग की जा रही है। मैं इसे उपयुक्त नहीं समझता। यह रोग का इलाज नहीं। इससे केन्द्रापसारी वृत्ति के बढ़ने की ही संभावना है। विशेष अवसरों को छोड़कर राज्यपाल एक संवैधानिक प्रमुख मात्र है। उसे न तो प्रदेश सरकार की मुहर बनना चाहिए और न केन्द्र की दलीय सरकार का हस्तक। अतः इस पद पर ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति होनी चाहिए जो सही माने में स्वविवेक का प्रयोग कर सकें तथा जिनकी निष्पक्ष पात्रता में सन्देह की गुंजाइश न हो। हारे हुए राजनीतिज्ञों अथवा सेवा-निवृत्त अफसरों के स्थान पर यह अच्छा होगा कि हम सर्वोच्च न्यायालय के सेवा - निवृत्त न्यायाधीशों को यह स्थान दें। सेवा-निवृत्ति की तिथि के अनुसार इनकी तालिका बना ली जाय तथा जब राज्यपाल का स्थान रिक्त हो तब उनकी क्रमानुसार नियुक्ति की जाय। इसमें न तो राज्य-सरकार की सहमति का प्रश्न रहेगा और न गृहमंत्रालय की मर्जी का।

संयुक्त शासनों की उपलब्धियाँ

संयुक्त मंत्रिमंडलों ने कांग्रेस शासन का विकल्प तो दिया किन्तु उसकी नीतियों और कार्यक्रमों की पर्याय प्रस्तुत करना न तो उनके लिए संभव था और न उनका निर्माण ही इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया था। खेद का विषय है कि कुछ दलों ने इन मंत्रिमंडलों की इस सीमा को न समझकर उन्हें अपनी नीतियों और कार्यक्रमों को पूरा करने का साधन बनाने का प्रयास किया। इस दलीय दृष्टिकोण और गैर-जिम्मेदारी के व्यवहार के परिणामस्वरूप ये सरकारें बराबर तनावपूर्ण एवं अनिश्चितता के वातावरण में काम करती रही हैं। प्रदेशों के सीमित साधनों और अधिकारों, केन्द्र के कांग्रेसी शासन की कुटिल नीति तथा घटक दलों की खींचतान के बाद भी इन शासनों ने अपने छोटे से कार्यकाल में जनता को राहत पहुँचाने के बहुत से काम किये हैं। जो चमत्कार की आशा करते थे उनकी अपेक्षाएं अवश्य पूरी नहीं हुईं। यदि इसमें से कुछ यथार्थवादिता और राजनीतिक विश्लेषण एवं विवेचन की प्रवृत्ति का उदय हुआ तो वह भी एक लाभ होगा। इन मंत्रिमंडलों के गठन ने राजनीतिक छुआछूत और विलगाव की मनोवृत्ति को समाप्त करने की ओर एक स्तुत्य पग बढ़ाया है। नीतिभेद रहते हुए भी दलों के बीच सहिष्णुता एवं आवश्यकतानुसार साथ काम करने की तैयारी प्रजातंत्र का आधार तथा राष्ट्रीय एकरसता का सूचक है। संयुक्त मंत्रिमंडलों का भविष्य चाहे जो हो, मेरी कामना है कि हम सभी इस उपलब्धि को हाथ से न जानें दें।

संसदीय प्रजातन्त्र कसौटी पर

संयुक्त मंत्रिमंडलों की तनावपूर्ण स्थिति तथा मंत्रिमंडलों के पतन के प्रयत्नों और परिणाम से उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता के कारण कुछ लोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसदीय प्रजातंत्र का परित्याग कर अध्यक्षीय प्रणाली अपनाने की सलाह दे रहे हैं। श्री अशोक मेहता का सुझाव है कि केवल प्रान्तों में इसे लाया जाय। केन्द्र और प्रांतों के बीच भेद क्यों किया जा रहा है? सत्य तो यह है कि ब्रिटेन और अमरीका की पद्धतियाँ वहाँ के इतिहास के साथ विकसित हुई हैं। हमें उनकी नकल करने के बजाय अपनी प्रकृति के अनुरूप प्रजातंत्रीय पद्धतियों का विकास करना चाहिए। पिछले पचास वर्षों से हम किसी न किसी रूप में संसदीय प्रणाली को व्यवहार में ला रहे हैं। हम इसे ही बदलती हुई राजनीति के अनुरूप ढालें। ब्रिटिश पार्लियामेंट की द्विदलीय राजनीति की परम्पराओं के स्थान पर यदि हम बहुदलीय राजनीति की नयी परम्पराओं को अपनाकर चलें तो संक्रमणकालीन अस्थिरता को भी टाला जा सकता है। उदाहरण के लिए यह परम्परा विकसित की जा सकती है कि कोई भी मंत्रिमंडल तब तक त्यागपत्र नहीं देगा जब तक उसके विरुद्ध विधानसभा में अविश्वास-प्रस्ताव पारित न हो जाय। इस दृष्टि से यह भी परम्परा डाली जा सकती है कि यदि विधानसभा के बहुसंख्यक सदस्य अध्यक्ष से आग्रह करें तो विधानसभा की बैठक बुलायी जाय।

दल-परवर्तन

प्रदेशों में मंत्रिमंडलों के गठन और पतन के प्रसंग में विधायकों द्वारा दल-परिवर्तन भी एक विचारणीय प्रश्न बन गया है। दल-परिवर्तन कोई नयी घटना नहीं है। चुनावों के पूर्व कांग्रेस छोड़ने का और बाद में कांग्रेस से नाता जोड़ने का क्रम सदैव रहा है। कांग्रेसियों की इस आवक-जावक से अनेक नये दल बने और बिगड़े हैं। जिन्होंने कांग्रेस नहीं छोड़ी, वे भी कांग्रेस के अन्दर विभिन्न गुटों के प्रति अपनी निष्ठा बदलते रहे हैं। फलतः कांग्रेस का नाम बना रहने के बाद भी मंत्रिमंडलों के सम्बन्ध में अनिश्चितता का वातावरण रहा है और उनका अनेक बार पतन हुआ है। स्वराज्य के बाद कांग्रेस और कांग्रेसजनों के सामने कोई निश्चित नीति एवं आदर्श न होने के कारण ही उनका इस प्रकार का व्यवहार रहा है। दल बदलने वालों में से निन्यानवे प्रतिशत वे लोग हैं जो कांग्रेस को छोड़कर दूसरे दलों में आये और फिर उन दलों को छोड़कर चले गये। ज्यों-ज्यों दलों का गठन निश्चित नीति और सिद्धान्तों के आधार पर होता जायेगा, उनका संगठन मजबूत होगा, तथा जनता की राजनीतिक शिक्षा होकर वह अपने मत का उपयोग दलों के कार्यक्रमों का विचार करके करेगी, यह प्रवृत्ति कम हो जायेगी।

इस विषय में कानून का सहारा लेने का सुझाव दिया गया है। जो जन-प्रतिनिधि हैं तथा जिनको कानून बनाने का अधिकार दिया गया है उनके आचरण को कानून के डण्डे से ठीक रखने के बजाय जनमत और परम्पराओं का सहारा लिया जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। प्रत्येक विधायक, दल के अतिरिक्त अपने निर्वाचन-क्षेत्र और देश के प्रति भी जिम्मेदार है। इन सभी जिम्मेदारियों का समन्वय और उनका निर्वाह किसी बंधे-बंधाये कानूनी ढाँचे में नहीं किया जा सकता। विधायकों को बाँधने के लिए यदि राजनीतिक दल एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आचरण-संहिता स्वीकार करें तो इस प्रवृत्ति पर काफी अंकुश लगाया जा सकता है। व्यक्ति को चुनने की ब्रिटिश पद्धति के स्थान पर दल के लिए मतदान की पद्धति को लाया जाये तो दल-परिवर्तन से ही नहीं, आज की अनेक राजनीतिक बुराइयों से बचा जा सकता है। पश्चिम जर्मनी के समान दोनों पद्धतियों का समन्वय भी कर सकते हैं।

केन्द्र और प्रांतों के सम्बन्ध

केन्द्र में कांग्रेसी तथा अनेक प्रदेशों में गैर-कांग्रेसी शासन होने के कारण केन्द्र और प्रदेशों के पारस्परिक सम्बन्धों का प्रश्न भी राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बन गया है। संविधान का स्वरूप संघीय है, किन्तु उसके प्रावधान एवं व्यवस्थाएं बहुतांश में एकात्मक हैं। पिछले बीस वर्षों के राजनीतिक ढाँचे, नियोजन तथा वित्तीय स्थितियों ने केन्द्र को और भी अधिकार-सम्पन्न बना दिया है। सभी स्तरों पर कांग्रेस का भारी बहुमत और शासन होने के कारण केन्द्र के इस अधिकार को न तो कभी चुनौती दी गयी और न उसके दुरुपयोग के सम्बन्ध में शिकायत का अवसर आया। कांग्रेस हाई कमान ने भी अपने प्रभाव का उपयोग इन सम्बन्धों को ठीक बनाये रखने के लिए किया। किन्तु अब स्थिति बदली है। प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी दल सत्ता में साझीदार हैं, वे अपने तरीके से जनता की सेवा करना चाहते हैं। उन्हें इसका पूरा अवसर तथा साधन मिलने चाहिए। यदि केन्द्र के शासकों ने सार्वभौम सत्ता के अपने दायित्व के अनुरूप हृदय की विशालता तथा निष्पक्षता का परिचय न देकर दलीय दृष्टिकोण से काम लिया तथा उसके लिए संविधान-प्रदत्त अधिकारों की दुहाई दी तो वह हानिकारक होगा। राष्ट्रवादी तो विफलता का अनुभव कर कुण्ठित होंगे, किन्तु वे दल, जो पहले से ही विघटन और पृथक्ता के पोषक हैं, इस स्थिति का लाभ उठाकर केन्द्र को चुनौती देंगे। पश्चिम बंगाल और केरल में कम्युनिस्टों का व्यवहार इसी प्रकार का रहा है। इन तनावों से देश की एकता को खतरा न पहुँचे, इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि एक ओर तो हम अपने संविधान के स्वरूप को एकात्मक बनायें तथा दूसरी ओर प्रदेशों को दायित्वपूर्ण स्वायत्तता प्रदान करने के लिए वित्तीय स्रोत एवं अन्य अधिकारों के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था की जाये।

स्थायी वित्त आयोग

वित्तीय दृष्टि से प्रदेश केन्द्र पर बुरी तरह निर्भर हैं। अधिकारों और दायित्वों का संविधान में इस प्रकार बँटवारा हुआ है कि लोक-कल्याण एवं विकास तथा प्रशासन की सम्पूर्ण जिम्मेदारी प्रदेशों पर है, जबकि आय के लचीले और फलदायी स्रोत केन्द्र के पास हैं। वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार यद्यपि आयकर तथा उत्पादन-शुल्क का कुछ भाग प्रदेशों को मिल जाता है, फिर भी वे बड़ी मात्रा में केन्द्रीय अनुदानों पर निर्भर रहते हैं। १९५१-५२ में प्रदेशों के व्यय का २९.४ प्रतिशत केन्द्र से प्राप्त हुआ था। १९६६-६७ के संशोधित आंकड़ों के अनुसार यह अनुपात ५५.३ प्रतिशत हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया है। इसी अवधि में केन्द्रीय अनुदान प्रदेशों के व्यय के ७ प्रतिशत से बढ़कर १९ प्रतिशत हो गया है। निश्चित ही यह स्थिति उत्तरदायी शासन की भावना के प्रतिकूल है, इसे बदलना होगा। इस हेतु संविधान में संशोधन की मांग की जा रही है। मैं समझता हूँ कि संविधान में संशोधन के स्थान पर बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप कोई लचीली व्यवस्था अधिक उपयुक्त होगी।

वित्त आयोग की नियुक्ति प्रति पाँच वर्ष के स्थान पर स्थायी कर दी जाये तथा अनुच्छेद २८२ के अन्तर्गत निर्दिष्ट अनुदान एवं ऋणों को भी उसकी विचारकक्षा में सम्मिलित कर लिया जाय तो यह उद्देश्य सिद्ध हो सकता है।

कर-पद्धति का पुनर्विचार हो

इसी सन्दर्भ में यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि प्रदेशों को भी अपने राजस्व-स्रोतों के भलीभांति दोहन का विचार करना चाहिए। कर-भार में कमी तथा करवसूली की पद्धति में सरलता की आवश्यकता का अनुभव करते हुए भी यह कहना पड़ता है कि अनेक प्रदेशों की कर-नीति के निर्धारण में राजनीतिक नारों का प्रभाव अधिक तथा प्रशासनिक जिम्मेदारी की भावना कम दिखती है। भूराजस्व, आयकर, बिक्रीकर आदि के बारे में आज काफी क्रान्तिकारी विचार रखे जा रहे हैं। अच्छा हो कि इन सबका शास्त्र-शुद्ध विचार कर लिया जाय क्योंकि ये सभी कर काफी समय से चले आ रहे हैं तथा राजस्व के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। अन्यथा भी सम्पूर्ण कराधान की जाँच के लिए एक आयोग की आवश्यकता है। पिछला आयोग १९५३-५४ में बैठा था। तब योजना का प्रारम्भ ही था। अब तीन योजनाएं समाप्त हो चुकी हैं। केन्द्र और प्रदेशों की करों से आय १९५१-५२ में कुल ६३८ करोड़ रु० थी जो अब १९६७-६८ के बजट के अनुसार ३५९९ करोड़ रु० अनुमानित है। इस बीच में भूराजस्व दुगुना, आयकर और कम्पनी कर चौगुना, बिक्रीकर नौगुना तथा उत्पादन-शुल्क अठारह गुना हो गया है। इन करों की दरों में समय-समय पर तात्कालिक आधार पर वृद्धियाँ हुई हैं और वे बाद में स्थायी बना दी गयी हैं। कुछ वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क, बिक्रीकर तथा चुंगी, सभी कर लगे हैं जिनसे उनके मूल्यों में भारी वृद्धि हो जाती है। पिछले पन्द्रह वर्षों में आय के वितरण में अन्तर आया है। रुपये की कीमत गिरी है। राज्यों की पुनर्रचना हुई है। योजना के सम्बन्ध में भी पुनर्विचार हो रहा है। अतः सभी दृष्टियों से यह आवश्यक है कि एक कर-जाँच आयोग नियुक्त किया जाय जो आर्थिक विकास, पूँजी-निर्माण, लोक-कल्याण, विषमताओं में कमी तथा विकेन्द्रित प्रशासन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सम्पूर्ण कर-पद्धति तथा विभिन्न करों के सम्बन्ध में अपना प्रतिवेदन दे।

अवमूल्यन से लाभ नहीं हुआ

देश की आर्थिक स्थिति, जो पिछले वर्षों से चिन्ता का कारण रही है, इधर और अधिक बिगड़ी है। मन्दी के लक्षण १९६५ के प्रारम्भ से ही दिखने लगे थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाकिस्तान के साथ लड़ाई के समय विदेशी सहायता और माल का आयात बन्द हो जाने के कारण उन उद्योगधन्धों को भारी आघात पहुँचा जो कलपुर्जों और कच्चे माल के लिए विदेशों पर निर्भर थे। किन्तु उस समय देश मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्थिति का मुकाबला करने के लिए तैयार था। फलतः एक बड़े पैमाने पर आयात-प्रतिस्थापन के कार्यक्रम लिये गये तथा यह विश्वास हो चला था कि शीघ्र ही हम स्वावलम्बी हो जायेंगे। इसके पूर्व कि ये प्रयास फल लाते, शासन ने विदेशी दबाव में आकर रुपये का अवमूल्यन कर दिया तथा ७५० करोड़ रुपये के मुक्त विदेशी ऋण के भरोसे उदार आयात-नीति का अवलम्बन किया। इस नीति का देश के उद्योगधन्धों पर उल्टा ही असर हुआ। मूल्य और विदेशी ऋणों में तो वृद्धि हो गयी, किन्तु औद्योगिक उत्पादन की गति नहीं बढ़ी। कुछ उद्योगों में तो १९६६ में १९६५ की तुलना में उत्पादन कम हुआ। सरकार का निर्यात-वृद्धि का उद्देश्य भी सिद्ध नहीं हो पाया। व्यापार खाते में १९६६-६७ में भारत का भुगतान-सन्तुलन ७७३.४ करोड़ रुपया प्रतिकूल रहा, जो पिछले सभी वर्षों से अधिक है। विदेश-व्यापार का यही रुख अभी तक बना हुआ है। अवमूल्यन के इतने हानिकारक परिणाम सामने आने के बाद भी प्रतीत होता है कि अन्तरराष्ट्रीय शक्तियाँ एक बार और अवमूल्यन कराने का प्रयास कर रही हैं। उपप्रधानमन्त्री और वित्त मन्त्री श्री मोरार जी देसाई ने त्यागपत्र की धमकी देकर दृढ़ता तो दिखाई है, किन्तु जब तक उन कारणों को दूर नहीं किया जाता जिनसे विदेशी विनिमय का संतुलन हमारे प्रतिकूल रहता है तथा हमें विदेशों के सामने याचक बनकर जाना पड़ता है, तब तक रुपये की कीमत को टिकाये रखना संभव नहीं होगा।

कामचलाऊ उपायों से काम नहीं चलेगा

लगातार बढ़ती हुई मन्दी को दूर करने तथा अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए व्यापक उपायों की आवश्यकता है। यह खेद का विषय है कि शासन न तो इसकी गंभीरता को समझा है और न उसने गहरा अध्ययन ही किया है। एकाध पहलू का विचार कर तात्कालिक उपायों से काम नहीं चलेगा। विदेशी कच्चे माल की कमी को मन्दी का एकमेव कारण मानकर जून १९६६ में अवमूल्यन किया गया। इस वर्ष का बजट प्रस्तुत करते समय सूखे और कृषि-उपज की कमी को उसका कारण समझकर अगली अच्छी फसल की आशा में इस ओर दुर्लक्ष्य कर दिया। अब रेल विभाग के आदेशों के सहारे कुछ इंजीनियरी उद्योगों को जिन्दा रखने की कोशिश की जा रही है, किन्तु यह नहीं सोचा गया कि रेलों के विस्तार की योजना स्थगित करने के बाद ये आदेश अपव्यय ही सिद्ध होंगे।

ध्यान बँटाने वाले प्रश्न

आज जब आर्थिक नीतियों में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है, तब केन्द्र में कांग्रेसी शासन अपना संम्पूर्ण समय और शक्ति ऐसे प्रश्नों पर लगा रहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है जो विचारणीय होते हुए भी आज की समस्या के हल करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। प्रिवी पर्सों का मामला, हजारी रिपोर्ट की चर्चा, बैंकों और आम बीमा के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव आदि आज के बहुचर्चित एवं ज्वलन्त समझे जाने वाले प्रश्नों का सम्बन्ध देश की विकट खाद्य स्थिति, गिरती हुई पैदावार, बढ़ती हुई बेकारी तथा चढ़ते हुए दामों से दूरान्वयन के साथ भी नहीं आता। और जब इन प्रश्नों पर बार-बार विवाद तो हो, किन्तु दो-टूक निर्णय न लिया जाय तो यह मानने को मजबूर होना पड़ता है कि सम्पूर्ण चर्चा का उद्देश्य या तो जनता का ध्यान ज्वलन्त प्रश्नों से हटाना है या राजनीतिक दबाव लाना है।

बैंकों का सामाजिक नियंत्रण

संसद् के पिछले अधिवेशन में वित्त मन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने बैंकों के विषय में एक जाँच आयोग बनाने की तथा उनके सामाजिक नियन्त्रण की अपनी योजना पर एक वक्तव्य दिया है। जब वित्त मन्त्री यह अनुभव करते हैं कि सम्पूर्ण मामले की जाँच करने के लिए एक कमीशन चाहिए तो अच्छा होता कि वे उसके प्रतिवेदन के लिए रुकते तथा अपनी सामाजिक नियन्त्रण की योजना को पेश करने में जल्दबाजी नहीं करते। आज की असली समस्या तो अधिक पूँजी-निर्माण की है। सामाजिक नियंत्रण से पूँजी तो नहीं बढ़ेगी। इसमें भी सन्देह है कि बैंको में जो रुपया जमा है, उसका इस योजना के अन्तर्गत अधिकतम अच्छा उपयोग हो सकेगा। खेती और छोटे उद्योगों के लिए पूँजी की आवश्यकता निर्विवाद है। किन्तु जिन उद्योगों में आज पूँजी लगायी जा रही है, क्या वे बिना पूँजी के चल सकेंगे या वे उद्योग अनावश्यक हैं? संचालक-मंडल में छोटे उद्योगों तथा कृषि के प्रतिनिधि रखने का विचार अच्छा है। परन्तु इनका चयन कैसे होगा? क्या वे नामजद होंगे? निश्चित ही अधिकांश का नामांकन राजनीतिक आधार पर ही किया जायेगा। संचालक-मंडल में खातेदारों को क्यों प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया? विदेशी बैंकों को इस योजना के बाहर रखा गया है। इसका असर निश्चित ही देशी बैंकों पर प्रतिकूल पड़ेगा। अच्छा हो कि सरकार इस प्रकार राजनीतिक योजनाओं के स्थान पर कुछ नये बैंक खोलकर पूँजी की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था करे।

योजना को छुट्टी मत दो

योजना आयोग से भी हमें निराशा हुई है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना को १ अप्रैल, १९६९ से प्रारम्भ करने का सुझाव रखकर उसने योजना की छुट्टी करने की बात मान ली है। आज छुट्टी की नहीं, अधिक काम की जरूरत है। जब स्थिति गम्भीर हो, तब तो और अधिक सोच-विचार के साथ योजनापूर्वक काम करना चाहिए। अभी तक की योजनाओं के कारण अर्थव्यवस्था में जो तनाव या दरारें पैदा हो गयी हैं उन्हें दूर करते हुए ऐसे कार्यक्रम अपनाने होंगे जिनसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विकसित क्षमता का भी पूरा-पूरा उपयोग किया जा सके। जिस तरह मनमाने ढंग से पिछले दो वर्ष की योजनाओं की काट-छाँट की गयी है वह मन्दी और प्रशिक्षित व्यक्तियों की बेकारी के लिए बहुत अंश में जिम्मेदार है। योजना के उत्पादक परिव्यय तो कम कर दिये गये, किन्तु शासन का अनुत्पादक खर्चा बढ़ा है। संतुलित बजट बनाने का यह तरीका आर्थिक विकास की दृष्टि से गलत है। मन्दी से राजस्व की आय गिरती है। दूसरी ओर प्रशासन-व्यय बढ़ने के कारण मूल्य बढ़ते हैं। फलतः कोशिशों के बावजूद घाटे की अर्थव्यवस्था टाली नहीं जा सकेगी। इस विषय में किताबी सूत्रों पर निर्भर न रहकर व्यावहारिक उपाय अपनाने चाहिए। बेकार क्षमता का उपयोग करने तथा आशुफलदायी क्षमता उत्पन्न करने के लिए यदि घाटे की अर्थव्यवस्था का सहारा लिया जाये तो वह लाभदायक ही सिद्ध होगी।

योजना आयोग को एक विशेषज्ञ के रूप में काम करना चाहिए तथा आज की समस्याओं का निदान करके उनके समाधान के लिए तात्कालिक एवं दूरगामी उपाय सुझाने चाहिए। नियोजन का अर्थ विभिन्न क्षेत्रों के लक्ष्य निश्चित करना और उनका गणित के अनुसार समीकरण बिठाना मात्र नहीं है। नियोजन के लिए कल्पकता, दूरदर्शिता और व्यावहारिकता की नितान्त आवश्यकता है। अभी तक की योजनाओं में इनका अभाव रहा है।

आर्थिक स्वाधीनता चाहिए

साधनों के अभाव का राग सदैव अलापा जाता है। मैं यह नहीं मानता कि देश में साधनों की कमी है। हमारे पास मानव, प्राकृतिक तथा वित्तीय, सभी प्रकार के साधन पर्याप्त हैं। आवश्यकता है कि वर्तमान तथा विकासमान साधनों के अनुरूप योजना बनायी जाय।

आज तक योजना का आधार विदेशी साधन, मशीन, तन्त्रज्ञ, पूँजी— और अब कच्चा माल तथा बाजार भी— रहा है। जो नहीं है उसकी प्राप्ति की तो योजना बनायी जाती है, किंतु जो है उसको बचाने का तथा उसके सहारे नये निर्माण का विचार नहीं किया जाता। हमने खेती और स्वदेशी उद्योगों की ओर दुर्लक्ष्य किया तथा हमारे लिए अहितकर एवं अप्रतिष्ठाकारक शर्तों पर भी विदेशी गठबन्धनों का स्वागत किया। विदेशी निहित स्वार्थ आज इतने प्रबल हैं कि वे देश के आर्थिक कार्यक्रमों को ही नहीं अपितु आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक क्षेत्र की नीतियों को भी प्रभावित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि हमें स्वतंत्रता बचानी है तो आर्थिक क्षेत्र में स्वावलंबी बनना होगा। भावी योजनाएं इसी आधार पर बनायी जायें।

कृषि की समस्याएँ

कृषि को प्राथमिकता देने की घोषणा तो कई वर्षों से की जा रही है, किन्तु शासन ने जो नीतियाँ अपनायी हैं उनमें किसान के हितों का तथा कृषि की आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखा गया। भारत में उर्वरक दुनिया के सभी देशों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के मुकाबले महँगा बिकता रहा है। ५५ करोड़ रुपये की सहायता जो शासन इस मद में देता था वह भी पिछले केन्द्रीय बजट में समाप्त कर दी गयी। विदेशी कंपनियों को यहाँ उर्वरक के कारखाने खोलने की अनुमति दी गयी है और उन्हें मनमाने दामों पर अपने उत्पादन बेचने की छूट दे दी गयी है। सत्य तो यह है कि यदि किसान की ईंधन की आवश्यकताएं मृदु कोक से पूरी कर दी जायें और उसे गोबर को खाद के रूप में प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय तो हमें उर्वरकों के नये कारखानों की आवश्यकता नहीं रहेगी। व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद् की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि 'भारत प्रतिवर्ष दस सिन्द्रियाँ जला देता है।' किन्तु हम घर की चीजों को छोड़कर बाहर वालों को बुलावा दे रहे हैं।

कुछ जिलों को छाँटकर सघन खेती का जो कार्यक्रम बनाया गया है वह पक्षपातपूर्ण है तथा कुल मिलाकर खेती से अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य को पूरा नहीं करता। बिना खाद के केवल उर्वरकों के अधिकाधिक प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति पर प्रतिकूल परिणाम होगा। उस दिन की कल्पना करके दिल एकदम सिहर जाता है जब आज की अदूरदर्शी नीतियों के परिणामस्वरूप तंजौर, लुधियाना जैसे हरे-भरे जिले ऊसर हो जायेंगे। हमें इस दुष्परिणाम से बचना ही चाहिए।

सिंचाई की ओर ध्यान तो अवश्य गया है, किन्तु सरकारी काम का ढंग कुछ ऐसा है कि 'का पानी जब कृषी सुखानी' की उक्ति ही चारों ओर सुनाई देती है। प्रान्तीय व्यामोह कुछ इतना बढ़ गया है कि करोड़ों क्यूसेक पानी समुद्र में तो फेंक देते हैं, किन्तु नदी-पानी के बँटवारे के प्रश्न पर हम एक इंच भी झुकने को तैयार नहीं हैं। नलकूपों के लिए बिजली की दर १२ पैसा यूनिट का निर्णय स्तुत्य है, परन्तु नलकूपों को बिजली मिले तब तो इस दर पर पैसा चुकाने का सवाल पैदा होगा।"

मूल्य-नीति और कृषि

गल्ला वसूली की योजनाओं ने तो किसान के पेट पर बुरी तरह लात मारी है। इस मामले में केरल तो सबसे बाजी मार ले गया है। यहाँ तो दफ्तर में बैठे हुए बाबू तय करते हैं कि किस किसान के खेत में कितना पैदा हुआ तथा उसको कितना खाना चाहिए। शेष सभी उसे सरकारी गोदाम में जमा कराने का आदेश दिया जाता है। केन्द्र ने विभिन्न फसलों के जो मूल्य निश्चित किये हैं वे पूर्णतः अनार्थिक हैं। मूल्यों की स्थिरता आवश्यक है। किन्तु उसके लिए किसान को अपनी फसल के उचित और पूरे मूल्यों से वंचित रखना अन्यायपूर्ण एवं आत्मघातक होगा। मूल्य-नीति का प्रमुख उद्देश्य उत्पादकों —विशेषकर प्राथमिक उत्पादकों—की आय को नीचे गिरने से बचाना होना चाहिए, क्योंकि कृषि-आय ही तो शेष अर्थव्यवस्था को टिकाने का और उसके विकास का साधन बनती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सस्ते गल्ले के लिए सहायता

यह सत्य है कि खाद्यान्न के बढ़े हुए मूल्यों से नगरवासी तथा कम और निश्चित आय वालों के लिए भारी कठिनाई पैदा हो गयी है। उन्हें सस्ते भावों पर जीवन की आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध की जानी चाहिए। यदि मद्रास सरकार कुछ नगरों में 'एक रुपये का एक माप' की योजना के अनुसार चावल बेच सकती है तो कोई कारण नहीं कि देश भर के नगरों में इस योजना को लागू न किया जा सके। महँगाई भत्ते को महँगाई से जोड़ना आवश्यक है। यह खेद का विषय है कि शासन ने इस नियम को स्वीकार नहीं किया जिससे यह प्रश्न विवाद एवं औद्योगिक अशान्ति का कारण बन जाता है। श्रमिकों और कर्मचारियों के अतिरिक्त पेन्शन पानेवालों को भी महँगाई भत्ता मिलना चाहिए तथा उनकी पेन्शन की मात्रा का निर्धारण विद्यमान वेतन-स्तर के अनुपात में होना चाहिए।

खाद्य-क्षेत्र तोड़ो

खाद्यान्नों के राज्य-क्षेत्र तथा विभिन्न वस्तुओं के लाने-ले जाने पर लगायी गयी रोक आर्थिक दृष्टि से गलत तथा संविधान की भावना के प्रतिकूल है। इस प्रकार की रोकों से वितरण का स्वाभाविक प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है जिससे मानवजनित अभाव पैदा होता है तथा तस्कर व्यापार और चोरबाजारी को प्रोत्साहन मिलता है। यह नीति राष्ट्रीय एकात्मता के मार्ग में बाधक है। अन्न जैसे प्रश्न पर भी जब हम व्यापक दृष्टिकोण से विचार नहीं कर सकते तथा प्रान्तों की आपाधापी का शिकार बन जाते हैं तो फिर राष्ट्रीय एकता का और कौन-सा व्यावहारिक रूप होगा? प्रतीत होता है कि इस नीति के पीछे घूसखोर अफसर, भ्रष्ट और सत्तालोलुप राजनीतिज्ञ तथा बड़े-बड़े तस्कर व्यापारियों के निहित स्वार्थ विकसित हो गये हैं जो तर्क को सिरे नहीं चढ़ने देते।

राष्ट्रीय स्तर पर प्रश्नों का विचार हो

देश की आर्थिक समस्याओं को दूर करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर स्पष्ट कल्पना, योजना, प्रयत्न और नेतृत्व के अभाव में प्रत्येक प्रदेश और वर्ग अपनी-अपनी चिन्ता कर रहा है। "Every man for himself and devil takes the hindmost" अर्थात् 'आप अपनी फिक्र कर लीजिए और बचे हुओं को भाड़ में जाने दीजिए' की अंग्रेजी कहावत ही चरितार्थ हो रही है। जान या अनजान में इससे प्रादेशिकता को बढ़ावा मिलता है। जब केरल के मुख्यमंत्री श्री नम्बूद्रीपाद केरल की कमायी हुई विदेशी मुद्रा को बाहर से अन्न मँगाने के लिए मांग करते हैं या केन्द्र के विरोध में केरल बन्द का आह्वान करते हैं तो निश्चित ही वे देश की एकता को एक धक्का पहुँचाते हैं। इसी प्रकार जब शिवसेना महाराष्ट्रवासियों के लिए न्याय के नाम पर दूसरे प्रदेश वालों की बम्बई में नौकरी या व्यापार के विरुद्ध आवाज उठाती है तो वह समस्याओं के सही स्वरूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को भूल जाती है। सम्पूर्ण देश के आर्थिक हित जुड़े हुए हैं। देश की बेकारी और गरीबी मिलकर ही दूर की जा सकती है।

अन्तरप्रान्तीय सीमा-विवाद

देश की राजनीतिक समस्याओं के समाधान में हमें इस एकता के दृष्टिकोण को नहीं भुलाना चाहिए। आज प्रान्तों के बीच कुछ सीमा के विवाद हैं। इन्हें उन सिद्धांतों को ध्यान में रखकर, जिनके आधार पर देश में प्रान्तों की पुनर्रचना हुई, सुलझा लेना चाहिए। भारतीय जनसंघ यह तो मानता है कि इन तत्त्वों में भाषा भी एक है, किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि वह एकमेव कसौटी है। भाषा का प्रशासन में, विशेषकर प्रजातन्त्रीय प्रशासन में, महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए सामान्यतया भाषाई सीमाएं ही प्रदेशों की सीमाएं बन गयी हैं। किन्तु कुछ लोग भाषा का इतना अतिरेकी एवं एकान्तिक विचार करते हैं कि उससे उपराष्ट्रवाद की बू आने लगती है। जनसंघ इसे उचित नहीं समझता। मैसूर-महाराष्ट्र तथा मैसूर-केरल के बीच के विवाद को सुलझाने के लिए महाजन आयोग की नियुक्ति हुई थी। निश्चत ही आयोग का प्रतिवेदन इस विवाद को हल करने में सहायक होना चाहिए। किन्तु यह तभी संभव है कि जब झूठी प्रतिष्ठा और आवेश को त्यागकर इस प्रश्न पर विचार हो। जंनमतसंग्रह आदि के सुझाव अतर्कसंगत हैं। सीमा-निर्धारण संसद् का कर्तव्य है तथा उसे अपने दायित्व का निर्वाह करना चाहिए।

असम की पुनर्रचना

असम की पुनर्रचना के प्रश्न को केन्द्रीय नेताओं ने काफी उलझा दिया है। आम चुनाव के पूर्व गृहमंत्री श्री यशवन्तराव चव्हाण द्वारा असम को एक संघ बनाने की घोषणा एक राजनीतिक भूल थी, जिसका परिमार्जन करना अब उनके लिए कठिन हो रहा है। वास्तविकता तो यह है कि संविधान के छठे परिशिष्ट में असम के पहाड़ी जिलों को अलग से स्थान देकर पृथक्ता के जो बीज बोये गये थे, उनके ही फल आज मिल रहे हैं। तीन लाख की जनसंख्या वाले नगाप्रदेश को अलग से राज्य बनाने के बाद इस प्रवृत्ति को और बढ़ावा मिला। इन विघटनकारी तत्त्वों को प्रेरणा और मार्गदर्शन देने का काम वहाँ के विदेशी पादरियों ने किया है। जब तक इन सभी प्रश्नों का गंभीरतापूर्वक विचार कर नीति नहीं अपनायी जाती, तब तक थेगली लगाने से काम नहीं चलेगा।

हिन्दू नगा क्यों नहीं?

छिपे नगाओं से शासन लम्बे अर्से से बातचीत कर रहा है। किन्तु अभी तक उसका कोई परिणाम नहीं निकला। दूसरी ओर यह भी समाचार है कि विद्रोही नगा कम्युनिस्ट चीन के साथ साठँगाँठ कर रहे हैं। साथ ही समय-समय पर उनकी ओर से हिंसात्मक कार्यवाहियाँ भी होती रहती हैं। मणिपुर के क्षेत्र में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेषकर उन्होंने अपनी गतिविधियाँ तेज की हैं। स्पष्ट है कि उग्रवादी तत्त्व बातचीत का लाभ उठाकर किसी बड़े विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं। भारत सरकार को सतर्कता बरतनी चाहिए तथा विद्रोही तत्त्वों को शान्तिप्रिय नगाओं से अलग करके उनके साथ दृढ़ता से काम लेना चाहिए। नगाक्षेत्र के सम्बन्ध में यह भी कहना समीचीन होगा कि वहाँ आधे से अधिक हिन्दू नगा रहते हैं। भारत सरकार ने अभी तक जो कुछ बातचीत की है वह बैपटिस्ट मिशन के माध्यम से की है। हिन्दुओं की जनजातियों को कभी प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। आवश्यकता है कि इनके हितों और अधिकारों की ओर दुर्लक्ष न किया जाय।

कश्मीर पर पीछे-हट असह्य

मिर्जा अफजल बेग के ऊपर से प्रतिबन्ध हटाने तथा शेख अब्दुला को दिल्ली में मुक्त कर देने के बाद वे तत्त्व फिर से सक्रिय हो गये हैं जो कश्मीर को भारत से अलग कर देना चाहते हैं। उनके तर्क यद्यपि थोथे सिद्ध हो चुके हैं तथा जनता ने सम्पूर्ण देश में और कश्मीर में भी उनके सुझावों को अराष्ट्रीय और अव्यावहारिक मानकर ठुकरा दिया है, फिर भी वे समय-कुसमय अपनी रट लगाने से बाज नहीं आते। पाकिस्तान से मित्रता का लालच दिखाकर वे भारत-शासन का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे हैं। किन्तु अब समय आ गया है कि इन शांति और न्याय के स्वयंभू संरक्षकों को, पाकिस्तान को तथा अन्य दूसरी शक्तियों को, जो उस प्रश्न पर दखल देती हैं, हमें बता देना होगा कि कश्मीर भारत की सार्वभौम सत्ता का अविभाज्य अंग है तथा उसके बारे में कोई समझौता नहीं हो सकता। यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ अथवा उसकी कोई भी एजेंसी इस विषय में दखल दे तो हमें उसे भी अस्वीकार कर देना चाहिए। कुछ लोग कश्मीर को शेष भारत के अन्य प्रान्तों के मुकाबले अधिक स्वायत्तता की वकालत करते हैं। यह विचार पृथक्तावादी तथा भारत की राष्ट्रीय एवं संवैधानिक मान्यताओं के खिलाफ है। हम असंदिग्ध रूप से स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि भारतीय जनसंघ और देश की जनता ऐसे किसी भी कदम को बर्दाश्त नहीं करेगी जिसमें भारत के साथ कश्मीर के पूर्ण एकीकरण की प्रक्रिया को उलटा जाय। यद्यपि संविधान का अनुच्छेद ३७० हमारी अपनी व्यवस्था है तथा उसके कारण काश्मीर की भारत संघ के अटूट अंग होने के विषय में किसी भी प्रकार की अनिश्चितता नहीं पैदा होती, फिर भी वह एक अपवादजनक प्रावधान है; उसे समाप्त कर देना चाहिए। उसका अब कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं बचा है, किन्तु उसकी समाप्ति का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत लाभ होगा। कश्मीर के बारे में जो तरह-तरह की अटकलबाजियाँ लगायी जाती हैं, वे सब बंद हो जायेंगी।

सादिक सरकार की असफलता

जम्मू और कश्मीर राज्य के आंतरिक प्रशासन की ओर भी केन्द्र को ध्यान देना चाहिए। श्री सादिक राज्य को एक स्वच्छ, निष्पक्ष एवं सुदृढ़ प्रशासन देने में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असमर्थ रहे हैं। पिछले दिनों एक हिन्दू बालिका के अपहरण एवं बलात् विवाह के मामले पर पुलिस ने तथा शासन ने जिस प्रकार उदासीनता, उपेक्षा तथा साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से व्यवहार किया, उससे कश्मीर घाटी के हिन्दुओं में असन्तोष तथा आशंकाएं पैदा हुई हैं। केन्द्रीय गृहमन्त्री से भी अपने वचनों का पालन न करने की शिकायत वहाँ के लोगों को रही है। यह उचित नहीं है कि किसी भी वर्ग में इस प्रकार न्याय न मिलने की तथा असुरक्षा की भावना पैदा हो। जम्मू और कश्मीर शासन ने नौकरियों आदि में प्रतिनिधित्व के प्रश्न की जाँच के लिए एक आयोग सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री गजेन्द्रगड़कर की अध्यक्षता में बनाया है। जहाँ तक क्षेत्रीय आधार पर भेदभाव का प्रश्न है, आयोग को अवश्य जाँच करनी चाहिए। किन्तु साम्प्रदायिक आधार पर जाँच का प्रस्ताव देश के संविधान की भावना तथा व्यवस्थाओं के प्रतिकूल है।

सांप्रदायिक दंगे और निहित स्वार्थ

पिछले दिनों देश के विभिन्न नगरों में कुछ साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं। ये घटनाएं दुर्भाग्यपूर्ण एवं निन्दनीय हैं। जहाँ तक प्रशासन का सम्बन्ध है उसे अशान्ति और उपद्रव की इस प्रकार की घटनाओं को दबाने और रोकने के लिए बिना किसी भेदभाव तथा हिचक के दृढ़तापूर्वक क़दम उठाने चाहिए। किन्तु मैं इतना अवश्य कहना चाहूंगा कि साम्प्रदायिक दंगों के लिए प्रशासन की नीति और व्यवहार निश्चित करने की जो संहिता प्रचलित है वह अंग्रेजी जमाने की बनी हुई है। इसका मूल उद्देश्य शरारती तत्त्वों की रोकथाम तथा दोषी को दण्ड दिलाना न होकर ऊपर से निष्पक्षता का दिखावा करना तथा वास्तव में दोनों समाजों के बीच की खाई को बढ़ाना ही था। इस तथाकथित बराबरी की कार्यवाही की संहिता को बदलकर उपद्रवियों के विरुद्ध कार्यवाही की नीति अपनानी चाहिए।

देश में ऐसे तत्त्व हैं जिनका इस प्रकार के दंगों में राजनीतिक स्वार्थ विकसित हो गया है। फलतः वे इन अवांछनीय घटनाओं को सीमित करने और दबाने के बजाय उन्हें अपने मतलब का रंग देकर चारों ओर ले उड़ते हैं। घटना चाहे जैसी हो, उनकी व्याख्या और प्रचार की लाइन तय है। इनके अनुसार हर स्थान पर मुसलमान मारे जायेंगे और मारने वालों में भारतीय जनसंघ तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता होंगे। कई बार तो जहाँ संघ और जनसंघ की शाखा भी न हो वहाँ भी इनके अखबारों में शाखाएं खुल जाती हैं। उनकी ये हरकतें उन गिरहकटों और उठाईगीरों की चाल के समान हैं जो लोगों को तथा पुलिस को भी भ्रम में डालने के लिए चोर से विरुद्ध दिशा में चोर-चोर चिल्लाकर दौड़ने लगते हैं तथा किसी भी भलेमानस को पकड़कर पीटने लगते हैं। तब तक असली चोर आराम से गायब हो जाता है। हमें इन तत्त्वों से सावधान रहना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाषा

देश के कामकाज के लिए अपनी ही भाषाओं का प्रयोग व्यावहारिक एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान दोनों ही दृष्टियों से आवश्यक है। इस वर्ष केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने भारतीय भाषाओं को उच्चतम शिक्षा का माध्यम बनाने की दिशा में स्तुत्य पग उठाया है। यह निर्णय शिक्षा आयोग की सिफारिशों के अनुरूप ही है तथा इसका अनुमोदन एवं समर्थन शिक्षा पर संसद् की समिति, शिक्षा-मंत्रियों के सम्मेलन तथा विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों के सम्मेलन ने भी किया है। फिर भी कुछ अंग्रेजीपरस्त लोग इस निर्णय का विरोध कर रहे हैं। वे जो समस्याएं बता रहे हैं, उनमें से अधिकांश संक्रमण-काल की हैं तथा कुछ काल्पनिक अथवा इक्के-दुक्के व्यक्तियों की। समस्याओं का हौवा खड़ा करने के बजाय उन्हें हल करने की ओर कदम बढ़ाना चाहिए।

विभिन्न प्रदेशों में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनने के बाद प्रादेशिक स्तर पर वहाँ की भाषाओं के प्रयोग में काफी तेजी आयी है। इसी प्रकार दृढ़ता से काम किया गया तो कुछ ही महीनों में सम्पूर्ण राजकाज जनता की भाषा में होने लगेगा। मैं उन सभी सरकारों को बधाई देता हूँ जो देश की भाषाओं को उनका उचित स्थान दे रही हैं। वे सच्चे अर्थों में जनता का प्रतिनिधित्व करती हैं।

केन्द्र में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग में शासन की नीति के कारण बराबर कठिनाइयाँ रहीं हैं। यह खेद का विषय है कि कांग्रेस शासन ने इस दिशा में सकारात्मक पग उठाने के बजाय विवाद और आंशकाएं पैदा करने का ही काम किया है। जनसंघ ऐसे किसी कदम का समर्थक नहीं जिससे हिन्दी न जानने वालों को किसी भी अधिकार से वंचित रहना पड़े। इस हेतु जनसंघ ने यह मांग की है कि संघ सेवा आयोग की सभी परीक्षाएं प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से हों तथा भर्ती के लिए किसी भी भाषा-विशेष के ज्ञान की बाध्यता न रहे। संक्रमण-काल में जो अंग्रेजी का प्रयोग करना चाहें उन्हें भी सुविधा दी जा सकती है; किन्तु अंग्रेजी का तो प्रभुत्व निर्बाध बना रहे तथा हिन्दी के प्रयोग की भी छूट न हो, यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। हाल में जो राजभाषा संशोधन विधेयक तथा प्रस्ताव पारित हुआ है, वह एक गलत दिशा में कदम है। इसके अनुसार केन्द्र की जो भाषा-नीति चलेगी उससे उन राज्य-सरकारों के मार्ग में भी कठिनाई पैदा होगी जो प्रान्तों में प्रादेशिक भाषाओं को चलाना चाहती हैं। मद्रास में तब तक तमिल का बोलबाला नहीं हो सकता जब तक दिल्ली में अंग्रेजी का प्रभुत्व कायम है।

अरब राष्ट्र सोचें

भारत-शासन की विदेश-नीति न तो जनभावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है और न राष्ट्र के हितों का संरक्षण। पश्चिम एशिया के संघर्ष में उसने जो नीति अपनायी, उसे जनता का समर्थन नहीं मिल सका। जब ब्रिटेन ने स्वेज पर बमबारी की थी तब हिन्दुस्तान की जनता ने भारी रोष प्रकट किया था। हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोग सदैव से अरब देशों की मित्रता के हामी रहे हैं। किन्तु जब भारत-पाक संघर्ष में हमारे प्रति सरासर अन्याय होते हुए भी अरब देशों ने हमारे साथ मौखिक सहानुभूति भी प्रकट नहीं की, बल्कि जोर्डन ने हमारे विरुद्ध पाकिस्तान की वकालत की, तो भारत की जनता को अरबों से भारी निराशा हुई। यह निराशा ही लोगों के बदले हुए रुख के लिए जिम्मेदार है। यदि अरब देश वास्तव में भारत की मित्रता चाहते हैं तो उन्हें हमारी भावनाओं को समझना होगा। जब अरब देश हमारे शत्रुदेशों के साथ सम्बन्ध रख सकते हैं तो हम अपने ऊपर भी यह बन्धन नहीं लगा सक्ते कि हम इस्राइल के साथ कोई सम्बन्ध न रखें।

चीन-पाकिस्तान गठबन्धन

कम्युनिस्ट चीन और पाकिस्तान दोनों के प्रति हमारी नीति वही होनी चाहिए जो आक्रमणकारी शत्रु देश के प्रति किसी भी स्वाभिमानी राष्ट्र की होती है। आश्चर्य का विषय है कि हमने फारमोसा की सरकार को अभी तक मान्यता नहीं दी। तिब्बत की स्वतन्त्रता के लिए हमारा सक्रिय योगदान होना चाहिए। दलाई लामा के प्रति हमारी नीति इस उद्देश्य की पूर्ति में साधक न होकर बाधक ही सिद्ध हो रही है। पाकिस्तान द्वारा ताशकन्द घोषणा को रद्दी के टोकरे में डालने के बाद भी हमारे नेताओं द्वारा उसकी रट लगाये जाना हास्यास्पद है। ऐसा प्रतीत होता है कि सोवियत रूस की पाकिस्तान के प्रति नीति में परिवर्तन आने के कारण हम भी रूसी नेताओं को खुश करने के लिए पाकिस्तान के साथ दोस्ती का राग अलापते रहते हैं। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा मास्को जाते समय पाक प्रधान अय्यूब खां को दिये गये सन्देश में मांगला बांध के निर्माण पर बधाई देने का और कोई कारण नहीं नजर आता। पाकिस्तान के प्रति हमारी नीति उसके व्यवहार के आधार पर निश्चित न होकर यदि रूस या अमरीका के इशारे पर तय होगी तो भारतखण्ड में कभी शान्ति नहीं रह सकेगी।

चीन और पाकिस्तान दोनों मिलकर अगले आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं। हम उनकी दुरभिसन्धि और योजनाओं से बेखबर नहीं रह सकते। पिछले दिनों में देश की सैनिक तैयारी में कुछ बढ़ोत्तरी अवश्य हुई है, फिर भी वह आवश्यकता से बहुत कम है। चीन ने परमाणु-अस्त्रों की दिशा में काफी प्रगति कर ली है। भारत सरकार अभी तक अपने पुराने हठवाद पर ही कायम है। हमें ये अस्त्र बनाने होंगे। बिना उनके हमारी सुरक्षा सदैव संकटापन्न रहेगी।

माओवादियों का षड्यन्त्र

चीन और पाकिस्तान के संकट के संदर्भ में हमें उन तत्त्वों की गतिविधियों का भी विचार करना होगा जो उनसे सैद्धांतिक प्रेरणा लेकर उनकी योजना के अनुसार ही यहाँ पर काम कर रहे हैं। पश्चिम बंगाल और केरल में माओवादी कम्युनिस्टों के प्रतिनिधि सत्ता में भागीदार होने के बाद उनका साहस बढ़ा है तथा उन्होंने अपने मन्तव्यों को पूरा करने के लिए सत्ता का खुलकर दुरुपयोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया है। एक ओर तो उन्होंने नक्सलबाड़ी जैसे कांड करके कानून और व्यवस्था को भंग किया और दूसरी ओर पुलिस एवं प्रशासन को निष्क्रिय बनाने की भी कोशिश की।

देश को सचेत रहना होगा तथा यह देखना होगा कि ये तत्त्व कोई ऐसी अशान्तिपूर्ण स्थिति न पैदा कर दें जिनका लाभ कम्युनिस्ट चीन और पाकिस्तान उठा लें। जब और जहाँ ये तत्त्व कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा करें तथा देश की सुरक्षा के लिए खतरा बनें, वहाँ उनका कठोरता से दमन करना चाहिए। आवश्यक है कि उनका मुकाबला राजनीतिक स्तर पर भी किया जाय। देश की जनता की राष्ट्रवाद तथा प्रजातन्त्र में गहरी निष्ठा है। वह उन तत्त्वों को सहन नहीं करेगी जो इन मान्यताओं के विरुद्ध चलते हैं।

भारत सरकार ने हाल में गैर कानूनी कार्यवाही अधिनियम बनाकर जो अधिकार लिये हैं वे अनावश्यक एवं अनुचित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पिछले चुनावों में हारने के बाद केन्द्र का कांग्रेस-शासन अपने आपको उन सभी हथियारों से लैस करना चाहता है जिससे वह अपनी भ्रष्ट सत्ता को टिकाये रख सके।

जागरण की वेला

हमें उन लोगों से भी सावधान रहना चाहिए जो प्रत्येक जन-आंदोलन के पीछे कम्युनिस्टों का हाथ देखते हैं और उसे दबाने की सलाह देते हैं। जन-आन्दोलन एक बदलती हुई व्यवस्था के युग में स्वाभाविक और आवश्यक हैं। वास्तव में वे समाज की जागृति के साधन और उसके द्योतक हैं। हाँ, यह आवश्यक है कि ये आन्दोलन दुस्साहसपूर्ण और हिंसात्मक न हों, प्रत्युत् वे हमारी कर्मचेतना को संगठित कर एक भावात्मक क्रान्ति का माध्यम बनें। एदतर्थ हमें उनके साथ चलना होगा, उनका नेतृत्व करना होगा। जो राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में यथास्थिति बनाये रखना चाहते हैं वे इस जागरण से घबराकर निराशा और आंतक का वातावरण बना रहे हैं। हमें दुख है कि हम उनके साथ सहयोग नहीं कर सकते। वे कालचक्र की गति को थामना चाहते हैं, भारत की नियति को टालना चाहते हैं। यह सम्भव नहीं होगा। हम अतीत के गौरव से अनुप्राणित हैं, परन्तु उसको भारत के राष्ट्र-जीवन का सर्वोच्च बिन्दु नहीं मानते; हम वर्तमान के प्रति यथार्थवादी हैं, किन्तु उससे बँधे नहीं; हमारी आँखों में भविष्य के स्वर्णिम सपने हैं, किन्तु हम निद्रालु नहीं बल्कि सपनों को साकार करने वाले जागरूक कर्मयोगी हैं। अनादि अतीत, अस्थिर वर्तमान तथा चिरन्तन भविष्य की कालजयी सनातन संस्कृति के हम पुजारी हैं।

हमारा लक्ष्य

हमने किसी संप्रदाय या वर्ग की सेवा का नहीं बल्कि संपूर्ण राष्ट्र की सेवा का व्रत लिया है। सभी देशवासी हमारे बान्धव हैं। जब तक हम इन सभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बन्धुओं को भारतमाता के सपूत होने का सच्चा गौरव प्रदान नहीं करा देंगे, हम चुप नहीं बैठेंगे। हम भारतमाता को सही अर्थों में सुजला, सुफला बनाकर रहेंगे। यह दशप्रहरणधारिणी दुर्गा बनाकर असुरों का संहार करेगी; लक्ष्मी बनकर जन-जन को समृद्धि देगी और सरस्वती बनकर अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलायेगी। हिन्द महासागर और हिमालय से परिवेष्टित भारतखंड में जब तक एकरसता, कर्मठता, समानता, सम्पन्नता, ज्ञानवत्ता, सुख और शान्ति की सप्तजाह्नवी का पुण्य-प्रवाह नहीं ला पाते, हमारा भगीरथ-तप पूरा नहीं होगा। इस प्रयास में ब्रह्मा, विष्णु और महेश सभी हमारे सहायक होंगे। विजय का विश्वास है, तपस्या का निश्चय लेकर चलें।

लेखक-परिचय

श्री विश्वनाथ नारायण देवधर

युवावस्था से ही पत्रकार। प्रारंभ में पुणे के 'दैनिक भारत' तथा 'केसरी' में संवाददाता। बाद में दैनिक 'महाराष्ट्र टाइम्स' के दिल्ली में विशेष प्रतिनिधि। १९७८ से फरवरी १९८४ तक पुणे के 'तरुण भारत' के मुख्य संपादक। अब बम्बई के 'लोकसत्ता' के सहसंपादक। पत्रकार के नाते उत्तम ख्यातिप्राप्त। व्यक्तिगत संपर्क रखने में निपुण। सटीकता, स्नेहपूर्ण स्वभाव, उत्तम वक्तृत्व, राष्ट्रवादी विचारों का ठोस अधिष्ठान आदि गुणों एवं आकर्षक लेखन-शैली के कारण आपने उल्लेखनीय प्रभाव अर्जित किया है। 'तरुण भारत' (पुणे) के संपादक के नाते १९८३ में विशेष आमंत्रण पर अमरीका की यात्रा की है। शिक्षाः बी.कॉम. तक। इस ग्रंथ में आपने परिश्रमपूर्वक अनेक लोगों से भेंट कर विविध स्मृतियों के रूप में पं. दीनदयाल जी का उत्कृष्ट व्यक्ति-दर्शन कराया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पं. दीनदयाल उपाध्याय : विचार-दर्शन

सादा जीवन और उच्च विचार की जीती जागती प्रतिमा— पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर काफी कुछ लिखा जा चुका है।

किन्तु जितनी गहराई और विस्तार में जाकर श्री दत्तोपन्त ठेंगडी, श्री नेने, श्री भिशीकर, श्री केलकर, श्री कुलकर्णी, श्री जोग तथा श्री देवधर ने उपाध्याय जी के मूलभूत चिन्तन के विविध पहलुओं को, स्थायी और तात्कालिक दोनों परिप्रेक्ष्यों में, प्रभावी रीति से प्रस्तुत किया है, वह वस्तुतः अभिनन्दनीय है।

उपाध्याय जी के 'विचार-दर्शन' पर प्रकाशित ये सात खण्ड प्रत्येक सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता के पठन, मनन और चिन्तन का विषय होने चाहिए।

अटल बिहारी वाजपेयी

खण्ड	नाम और विषय	लेखक
१.	**तत्त्व जिज्ञासा** (अनुवर्ती ६ खण्डों की प्रस्तावनास्वरूप स्वतंत्र विवेचन)	श्री दत्तोपन्त ठेंगड़ी
२.	**एकात्म मानव दर्शन** (एकात्म मानववाद का व्याख्यात्मक विवेचन)	श्री वि.वा. नेने
३.	**राजनीतिक चिन्तन** (दीनदयाल जी से उनके अनुयायियों को उत्तराधिकार में मिली राजनीतिक पद्धति)	श्री भा.कृ.केलकर
४.	**एकात्म अर्थनीति** (एकात्म मानववाद पर आधारित आर्थिक नीति)	श्री शरद अ.कुलकर्णी
५.	**राष्ट्र की अवधारणा** (दीनदयाल जी के राष्ट्रविषयक विचारों का विशद परिप्रेक्ष्य)	श्री चं.प. भिशीकर
६.	**राजनीति राष्ट्र के लिये** (राज्य और राजनीति साध्य नहीं, मात्र साधन हैं। साध्य है राष्ट्र का परम वैभव)	श्री ब.ना.जोग
७.	**व्यक्ति-दर्शन** (दीनदयाल जी के अति सरल, किन्तु विलक्षण बुद्धिमान, त्यागमूर्ति, आत्मीय व्यक्तित्व की झाँकी, उन्हीं के विचार-संकलन सहित)	श्री वि.ना.देवधर

सुरुचि प्रकाशन
केशव कुंज, झण्डेवाला, नयी दिल्ली-११००५५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.